१
मोहनजोदड़ो में पानी की निकासी का प्रबन्ध

२
मोहनजोदड़ो का एक कुँआ

भारतीय वास्तुकला के ५,००० वर्ष

सम्भवतया मानवीय संस्कृति के किसी भी अंग में मनुष्य के उत्थान व ह्रास का इतना पूर्ण चित्र नहीं उभरता जितना भवन-निर्माण कला में। अत्यन्त आदिम ढंग के घर से लेकर भव्य मन्दिरों और राजप्रासादों में हमें सहज ही पता चल जाता है कि किस प्रकार मनुष्य सदा से अपने सामाजिक तथा धार्मिक विचारों और जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रकट करने का अनवरत प्रयास करता आ रहा है। भवन-निर्माण कला के विकास में हम सौन्दर्य के प्रति मनुष्य की इस अभिरुचि को भी खोज सकते हैं जिससे अनुप्रेरित होकर उसने सौन्दर्य और उपयोगिता का समन्वय किया। सभ्यता के आदिम-युग से लेकर आज की विकसित अवस्था तक की भारतीय भवन-निर्माण कला का इतिहास भी इस ऐतिहासिक नियम का अपवाद नहीं है।

भारतीय भवन-निर्माण कला की प्राचीनतम स्थिति ३,००० ई० पू० के सिन्धु घाटी के प्राचीन नगरों के खण्डहरों में देखी जा सकती है। सिन्ध प्रदेश के मोहनजोदड़ो और पंजाब के हड़प्पा नगरों में खुदाई करने से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनसे स्पष्ट है कि उस प्राचीन युग में भी भारतीय नगरों का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति पर होता था। उनमें चौड़ी सड़कें और सँकरी गलियाँ होती थीं, जिनमें दुकानें बनी रहती थीं। सम्भवतः मकान एक या दो मंज़िल के होते थे, जिनकी छतें पकी हुई मिट्टी से बनाई जाती थीं। प्रायः सभी मकानों में एक स्नानागार होता था, जो मकान के सड़क वाले हिस्से में होता था जिससे पानी की निकासी सरलता से हो सके। उनमें पानी की निकासी का उपयुक्त प्रबन्ध रहता था (चित्र नं० १)। ईंटों की बनी एक नाली प्रत्येक सड़क के नीचे से जाती थी, और इस मुख्य नाली में सड़क के दोनों ओर बने हुए मकानों की छोटी-छोटी नालियाँ आकर मिल जाती थीं। जल निकासी की व्यवस्था की दूसरी प्रमुख विशेषता यह थी कि नगर की सीमा पर ईंटों की बनी हुई कंगूरेदार छतों से युक्त बड़ी-बड़ी नालियाँ थीं, जो बरसाती पानी ले जाने के काम आती थीं। घरों में भी ईंटों के बने हुए पक्के कुएँ हुआ करते थे (चित्र नं० २)।

हड़प्पा में उपलब्ध एक भवन के खण्डहर में बारह समानान्तर दीवारें हैं। यह इमारत क्या
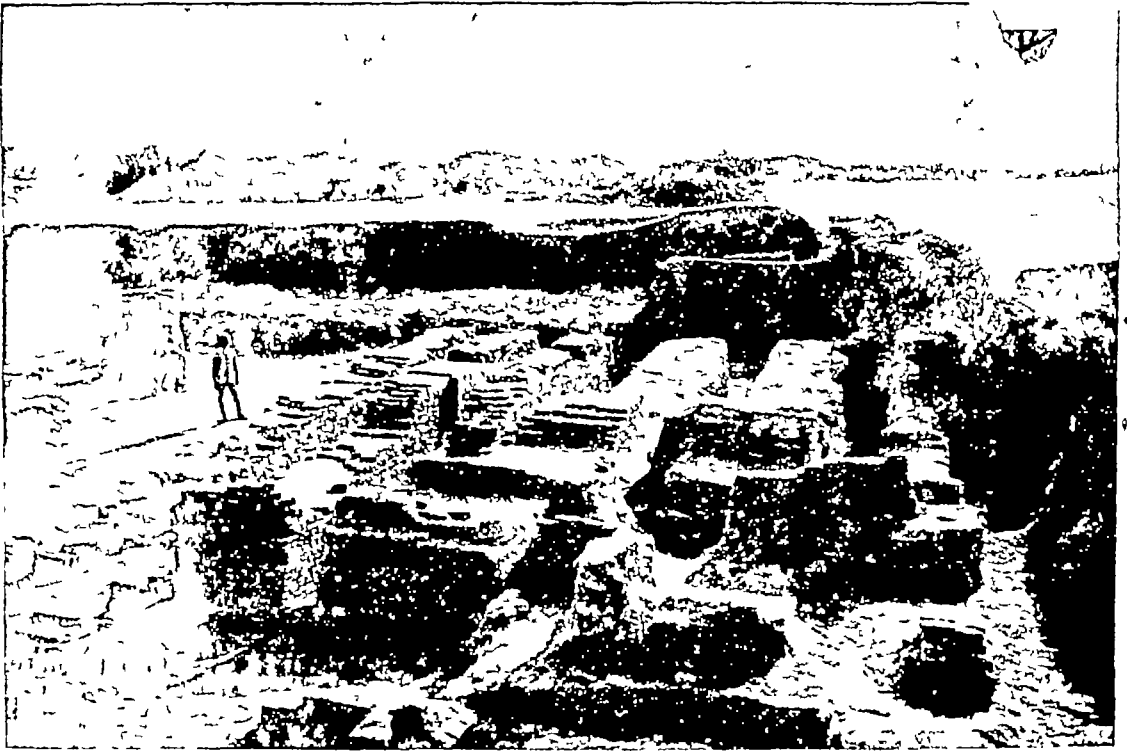
३ और ४ बारह समानान्तर दीवारों सहित एक इमारत के खण्डहर, हड़प्पा

४

थी इसका हम ठीक-ठीक निश्चय नहीं कर सकते। परन्तु सम्भवतया यह एक विशाल भण्डारगृह रहा होगा (चित्र नं० ३ और ४)। मोहनजोदड़ो की कुछ इमारतों में सड़क के किनारे प्याले के ढग पर गड्ढे बने रहते थे। शायद ये गड्ढे बड़े-बड़े मटके रखने के काम आते थे।

मोहनजोदड़ो के प्रमुखतम भवनों में एक बहुत बड़ा स्नानागार है, जो पूर्ण रूप से पक्की ईंटों का बना हुआ है और जहाँ पहुँचने के लिए दोनों सिरों पर सीढ़ी बनी हुई थी (चित्र नं० ५)। स्नानागार की चौड़ी छत मिट्टी से भरे हुए ईंटों के ऊपर आधारित थी। दीवारों में ऐसे प्रवेश-द्वार थे जिनमें होकर बाहर से आने वाली लताओं से आच्छादित स्नानागार के चारों तरफ घूमने के लिए एक मार्ग-सा बन गया था। स्नानागार के उत्तर में बने हुए आठों स्नानागारों में सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। यह शायद ऊपर की मंजिल में जाने के लिए थीं। इन बड़े और छोटे स्नानागारों का ठीक महत्त्व तो अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि मोहनजोदड़ो के निवासियों के लिए स्नान करना एक धार्मिक कृत्य था।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का, जिसका अन्त ईसा से २ हजार वर्ष पूर्व हो चुका था, और ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के बीच के समय का भारतीय भवन-निर्माण कला का इतिहास बड़ा नगण्य-सा है। इस युग के इतिहास को जानने के लिए हमें पूर्ण रूप से साहित्य का सहारा लेना पड़ता है। वैदिक प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक आर्यों ने नगर की किलेबन्दी करने का विचार अपने शत्रु दासों से लिया था। पर अभी तक हम दासों का सिन्धु घाटी के निवासियों से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सके हैं।

५ बड़े स्नानागार का सममापीय उभरा हुआ भाग, मोहनजोदड़ो
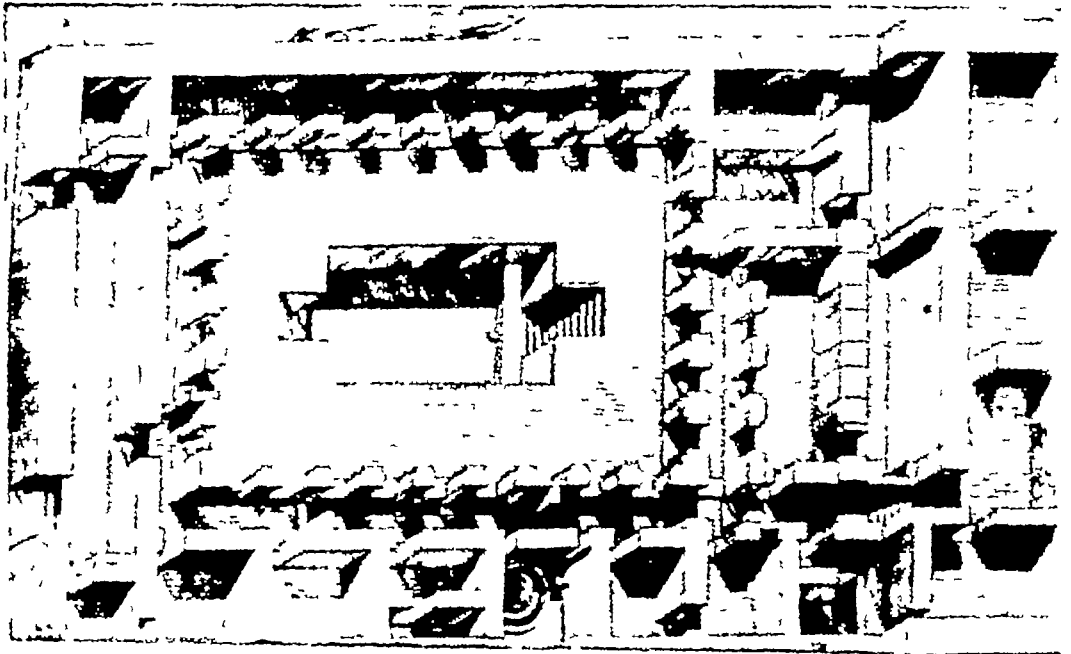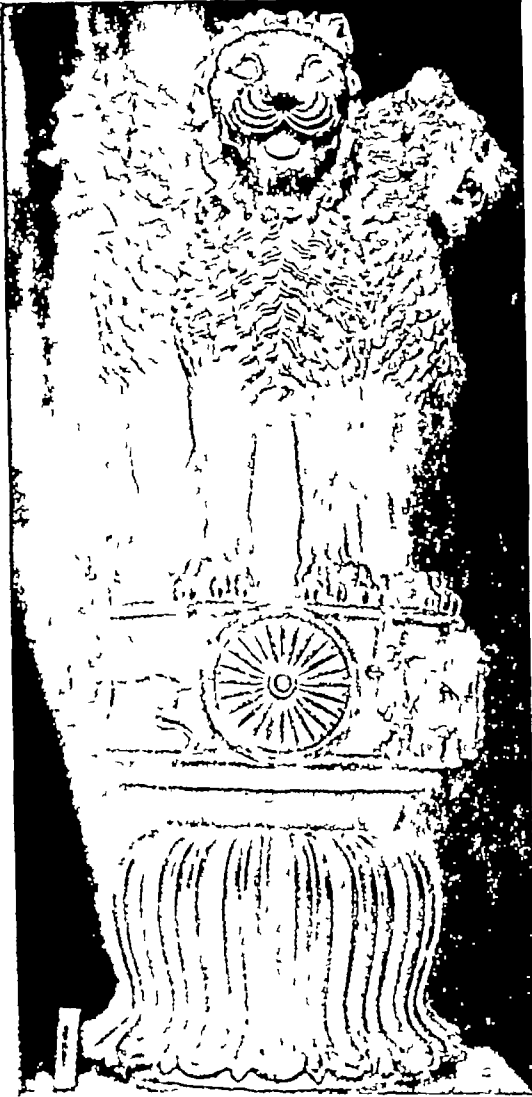
६ सिंह स्तम्भ, सारनाथ

वैदिक सभ्यता के युग में घरों का निर्माण कोई खास शानदार नहीं होता था और लोग अधिकतर कई कमरों के क्रम के मकानों मे रहते थे। घर के बीच में प्रायः एक बड़ा हॉल होता था और दूसरे कई कमरे होते थे जो भण्डार के और रहने के काम आते थे।

रामायण-महाभारत और बौद्ध साहित्य में सुन्दर नगरों तथा भव्य प्रासादों के उल्लेख हैं। मालूम होता है कि यह नगर और प्रासाद पाटलिपुत्र नगर के ही समान बने हुए थे। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में मेगस्थनीज़ ने लिखा था कि पाटलिपुत्र में एक सकीर्ण समानान्तर चतुर्भुज होता था, जिसके चारों ओर विशाल परकोटा बना रहता था। उसमें धनुर्धारियों के लिए छेद बने रहते थे। उसके चारों ओर एक गहरी खाई थी। किले के चौंसठ द्वार थे। राजकीय महल एक विशाल भवन था और स्तम्भ युक्त छतों वाले कई हॉल उसका प्रमुख भाग थे।

अशोक काल (२७३-२३७ ई० पू०) में भवन-निर्माण कला अधिक उन्नत दिखाई देती है, क्योंकि इस समय पहली बार लकड़ी के स्थान पर पत्थर का प्रयोग दिखाई देता है। अशोक के समय की इस महान कला का विशेष रूप से एक पत्थर के बने हुए स्तम्भों में जिस पर घोषणाएँ खुदी रहती थीं, दर्शन होता है। सारनाथ के स्तम्भ के ऊपरी भाग में चार परस्पर जुड़े हुए सिंह बने हैं, जिन पर आरम्भ में धर्मचक्र आधारित था। यह धर्मचक्र ऊपरी पत्थर पर बना हुआ था और इस पर एक हस्ती, एक अश्व, एक वृषभ और एक सिंह की मूर्ति बनी हुई थी (चित्र न० ६)। इस समय वर्तमान दूसरे स्तम्भों में शीर्ष स्थान पर या तो वृषभ मूर्ति है अथवा चक्र। सभी स्तम्भों पर भली भाँति पालिश की हुई थी। बाड़ाबर की पहाड़ियों मे खुदाई करने पर अशोककालीन कई हॉल मिले हैं। इन पहाड़ियों की सुदामा गुफा में एक गोलाकार कमरा है और सामने

एक छोटा कमरा है जिसके दोनों ओर द्वार बने हुए हैं। पाटलिपुत्र मे अशोक के महल के खण्डहरों से पता चलता है कि इसके निर्माण की योजना परसीपोलीज़ के एशोमेनिड राजाओं के स्तम्भ युक्त हॉल के नक्शे के आधार पर बनाई गई थी।

अशोक के समय भारतीय भवन-निर्माण कला की जो उन्नति हुई थी, वह ई० पू० २०० से २० ई० तक निरन्तर प्रगति करती रही। गुफा-निर्माण कला की उन्नति का एक चित्र ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के, पूना के समीप भाजा के प्राचीन विहार में देखा जा सकता है। यह दीवारों पर उत्कीर्ण अद्वितीय मूर्तियों के लिए प्रसिद्ध है। इनमें से एक मूर्ति के सम्बन्ध में डा० कुमारस्वामी का मत है कि यह ऐरावत पर सवार इन्द्र की मूर्ति है। पूना के समीप तत्कालीन बेदसा तथा अन्य गुफाओं में मन्दिर के पृष्ठभाग, गोलाकार छत और पार्श्व भाग है। तत पर एक ठोस स्तूप बना है जो छत के चारों ओर पार्श्व भाग में फैला हुआ है और जिससे एक वृत्ताकार मार्ग बन जाता है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे निर्मित कार्ले का चैत्य हॉल गुफा-निर्माण कला का उत्कृष्ट उदाहरण (चित्र नं० ८) है। इसकी अर्ध-चन्द्राकार खिड़कियाँ, विशाल स्तम्भ और सुन्दर चित्रकारी से युक्त उत्कीर्ण मूर्तियाँ बरबस हमे आकर्षित कर लेती है।

भरहुत स्तूप के तोरण द्वार तथा जंगले के अवशेष लगभग ई० पू० १५० के समझे जा सकते हैं। जंगले के स्तम्भ तथा तोरण द्वार संरक्षक यक्ष और यक्षी, नागराज, बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित जातक कथाओं, पुष्पों, पशुओं तथा अन्य अनेक प्रकार की मूर्तियों से सज्जित हैं (चित्र नं० ९)। इनमें स्वयं बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं है। उनके जीवन की घटनाओं को प्रतीकों द्वारा दर्शाया गया है।

गया के बोधि वृक्ष से सम्बन्धित एक विशिष्ट प्रकार का मन्दिर था। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक की उत्कीर्ण मूर्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस मन्दिर में एक गैलरी थी जिसमें सामान्यतया प्रचलित मेहराबदार छत और चैत्यनुमा खिड़कियाँ थीं, जो स्तम्भों पर स्थित होने से माल्टा के क्रॉस के समान दिखाई देती थीं।

साँची के स्तूपों की निर्माण-तिथि भिन्न है। स्तूप संख्या १ का मध्य भाग सम्भवतः

७ गुफा मन्दिर, भाजा

८

चैत्य हॉल का मुख भाग, कार्ले
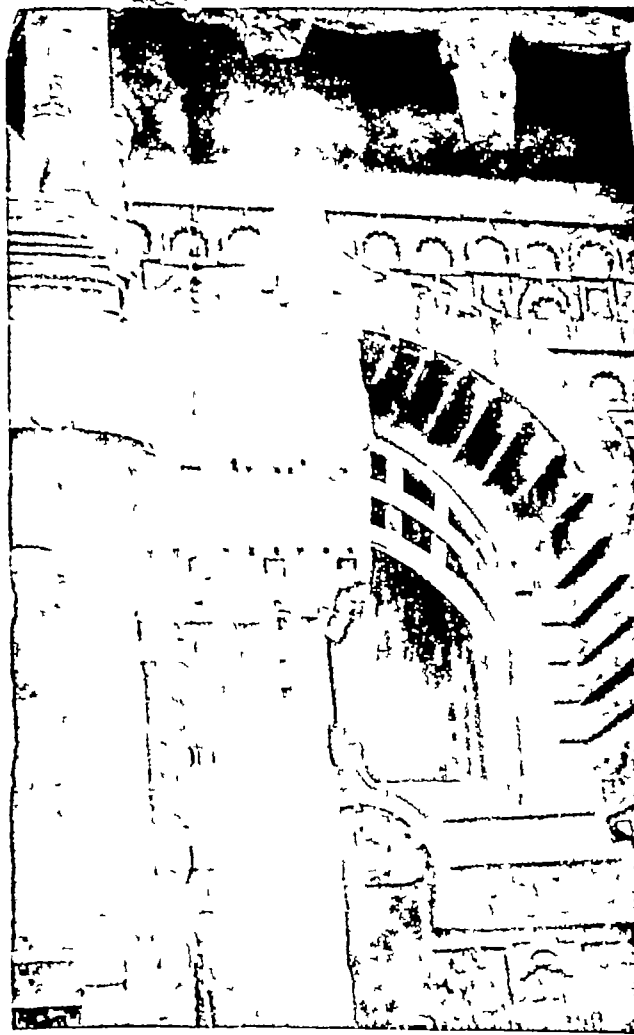
मौर्यकाल का है। स्तूप संख्या २ और ३ शुङ्ग काल के हैं और संख्या १ तथा ३ के तोरण द्वार सातवाहन काल (७२-२५ ईसा पूर्व) के हैं। स्तूप सं० २ पर बनी हुई नक्काशी भरहुत शैली की है, यद्यपि उसमें कुछ स्थानों पर ऐसी भी नक्काशी है जिससे उस पर बैक्ट्रिया की ग्रीक शैली की कला के व्यापक प्रभाव की सम्भावना मानी जाती है, परन्तु इसका अधिक उपयुक्त कारण भारतीय कला प्रणाली की विकासोन्मुखता ही प्रतीत होती है।

महान तोरण द्वार की उत्कीर्ण मूर्तियाँ (चित्र नं० १० और ११) अपने सुन्दर अलंकरण से कहानी-अंकन कला के अद्वितीय उदाहरण हैं। कथानकों का निर्वाचन प्रमुख रूप से बुद्ध की जीवन-गाथा और जातक कथाओं से हुआ है। बड़ी कथाओं को चित्रित करने का प्रयास तोरण के चारों ओर किया गया है।

तक्षशिला तथा अन्य स्थानों पर जो उत्खनन कार्य हुआ है, उससे हमें ७८ ई० से ३०२ ई० तक भवन-निर्माण कला का विकास प्रदर्शित करने वाले उपकरण उपलब्ध हुए हैं। विहारों

९

भरहुत का जंगला
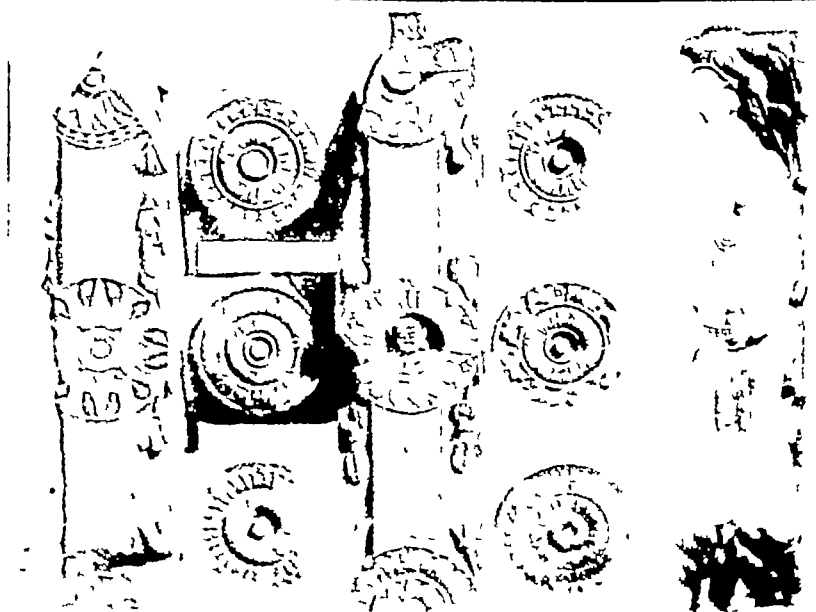
की निर्माण शैली मूल रूप से भारतीय है, परन्तु असंख्य मूर्तियाँ, उदाहरणार्थ कोरिन्थियन शीर्ष, त्रिकोण छज्जे, स्तम्भो के शीर्ष भाग, अलंकरण इत्यादि दूषित शास्त्रीय कला के प्रतीक हैं। गान्धार पद्धति पर निमित सामान्य विहार मे मुख्य रूप से दो इमारतें होती हैं : स्तूप और विहार। इसके अलावा कुछ अन्य भवन भी होते हैं।

दक्षिण में निर्मित विशाल स्मारकों में अमरावती स्थित महान स्तूप उल्लेखनीय है। यद्यपि इसका निर्माण मूल रूप मे ई० पू० दूसरी शताब्दी में ही हो चुका था, परन्तु इस पर शिल्पकारी से अलंकृत शिलाओं का आवरण और जँगलों का निर्माण ईसा की प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय शताब्दी में ही हुआ था। स्तूप के नगाड़े पर सामने झुके हुए चार आफसेट थे, जो उसके प्रत्येक द्वार के सामने की ओर मुँह किए हुए बने थे तथा 'आयक खम्भ' नामक स्तम्भों का प्रदर्शन करते थे। स्तूप चारों ओर से एक वेष्टनी से आवृत था (चित्र १२)। इन पर अलंकरण के उपकरणों में गुलाब मालाएँ ले

१०
साँची का तोरणद्वार
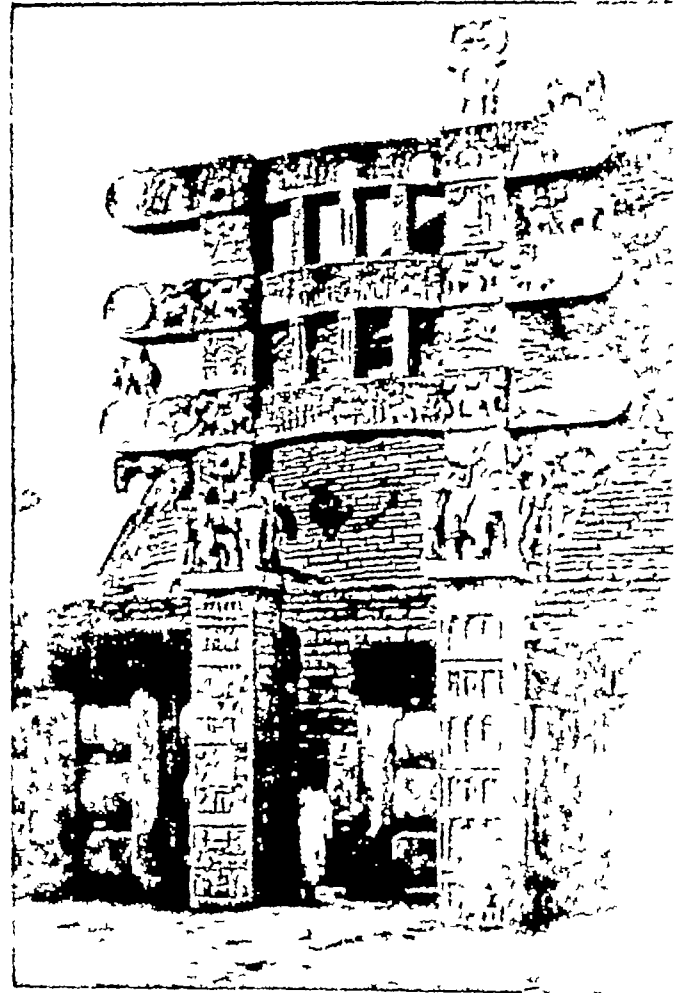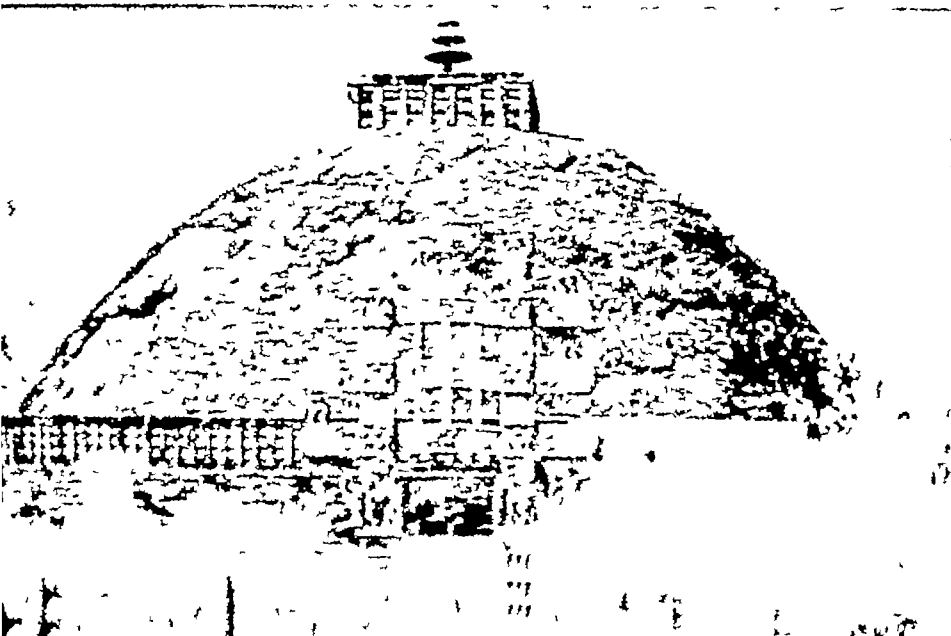
११
महान स्तूप, साँची
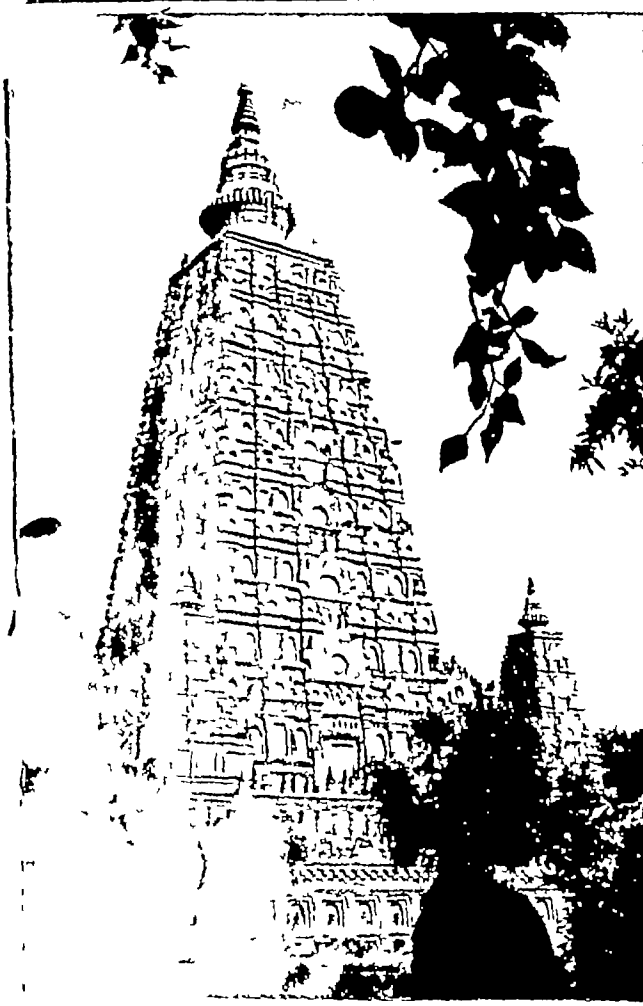
होते थे तथा उनमें अनेक स्तम्भों से युक्त बड़े-बड़े कमरे होते थे। इनकी छतें चौरस अथवा नुकीली होती थीं, जिन पर चित्र अथवा पच्चीकारी बनी रहती थी। इनमें एक सगीत कक्ष तथा चित्र-गैलरी भी बनी होती थी।

गुप्तकाल के पश्चात पूर्व मध्यकाल में (६५०-१००० ई०) दक्षिण में चालुक्य, राष्ट्रकूट और पल्लव तथा उत्तर में पाल वंशों द्वारा भारतीय भवन-निर्माण कला की यथेष्ट अभिवृद्धि हुई। सातवीं शताब्दी में बौद्धों का नालन्दा विश्वविद्यालय अपने विकास पर था। यह विश्वविद्यालय चारों ओर से ईंटों की दीवार से घिरा था और विद्यालय के बड़े हॉल में जाने के लिए उसमें एक द्वार था। अन्य कक्ष इस कक्ष से कुछ दूरी पर स्थित थे। ग्रह-निरीक्षण के लिए उसमें एक वेधशाला भी थी। बाह्य आँगन में चार भागों में बँटे हुए महन्तों के कक्ष थे। प्रत्येक भाग अलंकृत और कलापूर्ण स्तम्भों के कारण पृथक था (चित्र १७)।

१६ बुद्ध गया का मन्दिर

१७ नालन्दा विश्वविद्यालय
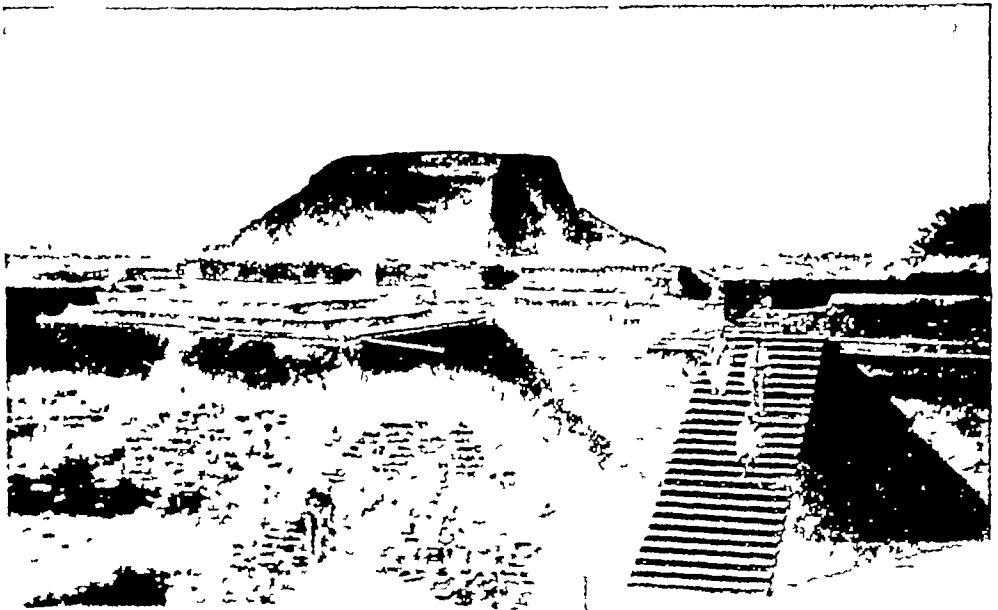
प्राय: ५५०-७४६ ई० के लगभग पूर्व चालुक्य काल की भवन-निर्माण कला का अध्ययन आइहोल, पट्टदकाल और बादामी के विख्यात मन्दिरों के द्वारा किया जा सकता है। शिव का महान विरूपाक्ष मन्दिर (७४० ई०) पट्टदकाल में गुड नामक एक शिल्पकार ने बनाया था। इस शिल्पकार को 'तीन लोक का विश्वकर्मा' उपाधि से विभूषित किया गया था। बादामी स्थित वैष्णव मन्दिर अपनी अनुपम शिल्पकला के कारण दर्शनीय है, तथा बरामदे के स्तम्भ अनेक शानदार मूर्तियों से सुसज्जित हैं।

राष्ट्रकूटों द्वारा निर्मित प्रसिद्ध स्मारकों व मन्दिरों में एलोरा के महान कैलाश मन्दिर का नाम उल्लेखनीय है। इस मन्दिर को (चित्र १६) कृष्ण द्वितीय ने (७५७-७८३ ई०)

१६
कैलाश मन्दिर का दक्षिणी दृश्य, एलोरा

१८

२०

एलीफैण्टा गुफा
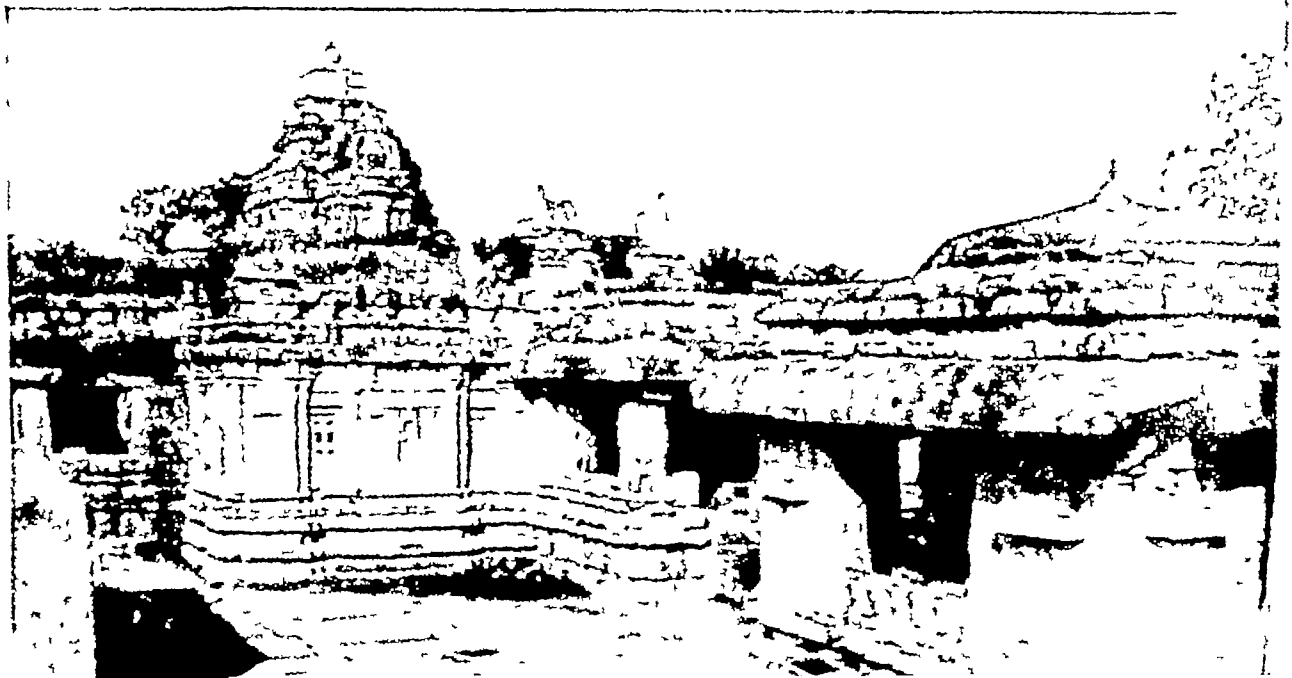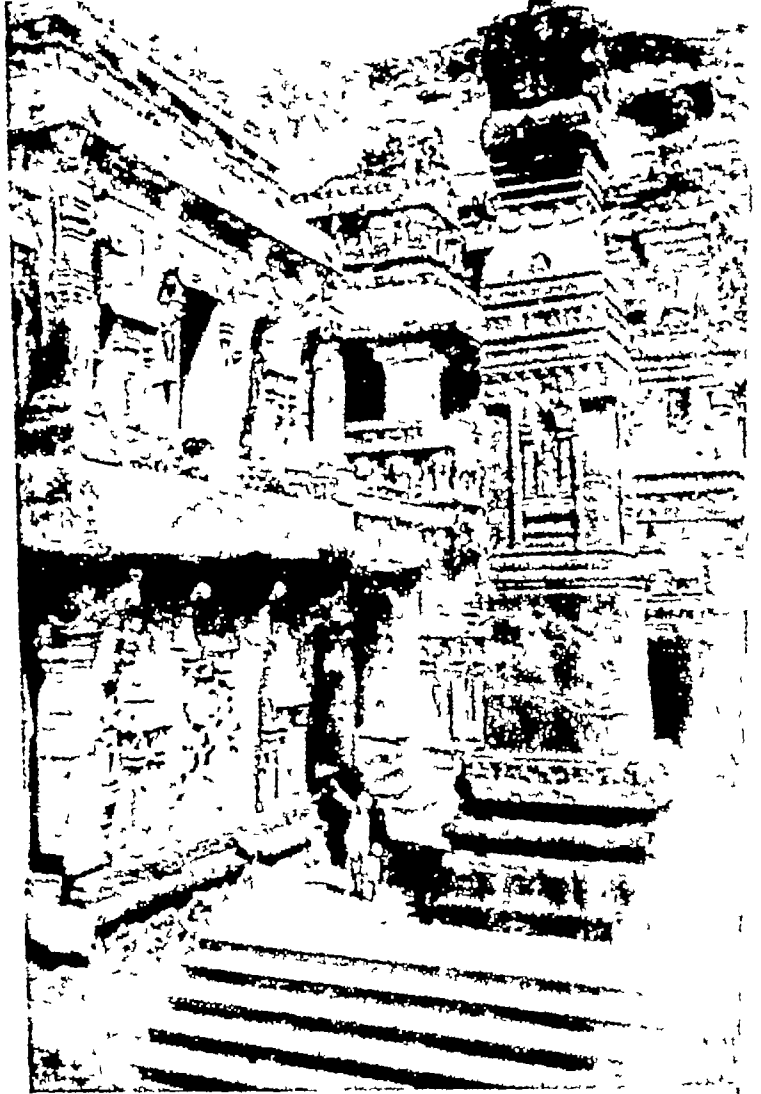
बनवाया था। यह मन्दिर भारत की सर्वोच्च कलात्मक शिल्पकारी से अलंकृत है।

प्रायः उसी समय के बने हुए बम्बई के समीपस्थ एलिफैण्टा गुफाओं के शैव मन्दिर हैं। इन मन्दिरों की प्रसिद्धि का कारण उनकी भवन-निर्माण कला इतनी नहीं है जितनी उनकी सुन्दर मूर्तिकला, जिसके फलस्वरूप वहाँ त्रिमूर्ति शिव जैसी अनुपम प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

२१

महाबलीपुरम में रथों का दृश्य

४०० ई० और ७५० ई० के मध्य दक्षिण भारत तथा पूर्वी घाट पर पल्लव वंश का एक शक्तिशाली राज्य था। वहाँ सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में निर्मित एकाश्मीय पाँच रथों का संक्षिप्त उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा (चित्र २१)। शीर्ष, सादे अथवा पड़े अलंकृत द्वीवारगार, कोष्ठक चैत्यवातायन तथा आलों से युक्त गोल कार्निस, मकर तोरण के ऊपर लगे पत्थर आदि इसकी शिल्पकारी की कुछ प्रमुख विशिष्टताएँ हैं। मानवी तथा देवमूर्तियाँ दोनों अत्यन्त कलापूर्ण हाथों से बनाई गई हैं। कांची में बना हुआ आठवीं शताब्दी का एक और पल्लव मन्दिर है, जिसका नाम कैलाशनाथ मन्दिर है। यह पिरामिड के आकार की एक मीनार है जिसमें सपाट स्तम्भों पर स्थित एक मण्डप है और सामने की ओर दूर तक कक्षों की कतारें चली गई हैं (चित्र २२ और २३)।

भारतीय वास्तुकला के अन्तर्गत उत्तर मध्य काल (६०० ई०-१३०० ई०) के बने हुए मन्दिरों तथा स्मारकों की संख्या इतनी अधिक है कि उनका यहाँ वर्णन करना सम्भव नहीं है। पाल, चालुक्य और चोल वंश, गंग तथा राजपूत नरेश प्राचीन केन्द्रों के अतिरिक्त नवीन कला-केन्द्रों का पोषण भी कर रहे थे। प्रत्येक

२२ कैलाशनाथ मन्दिर, कांची
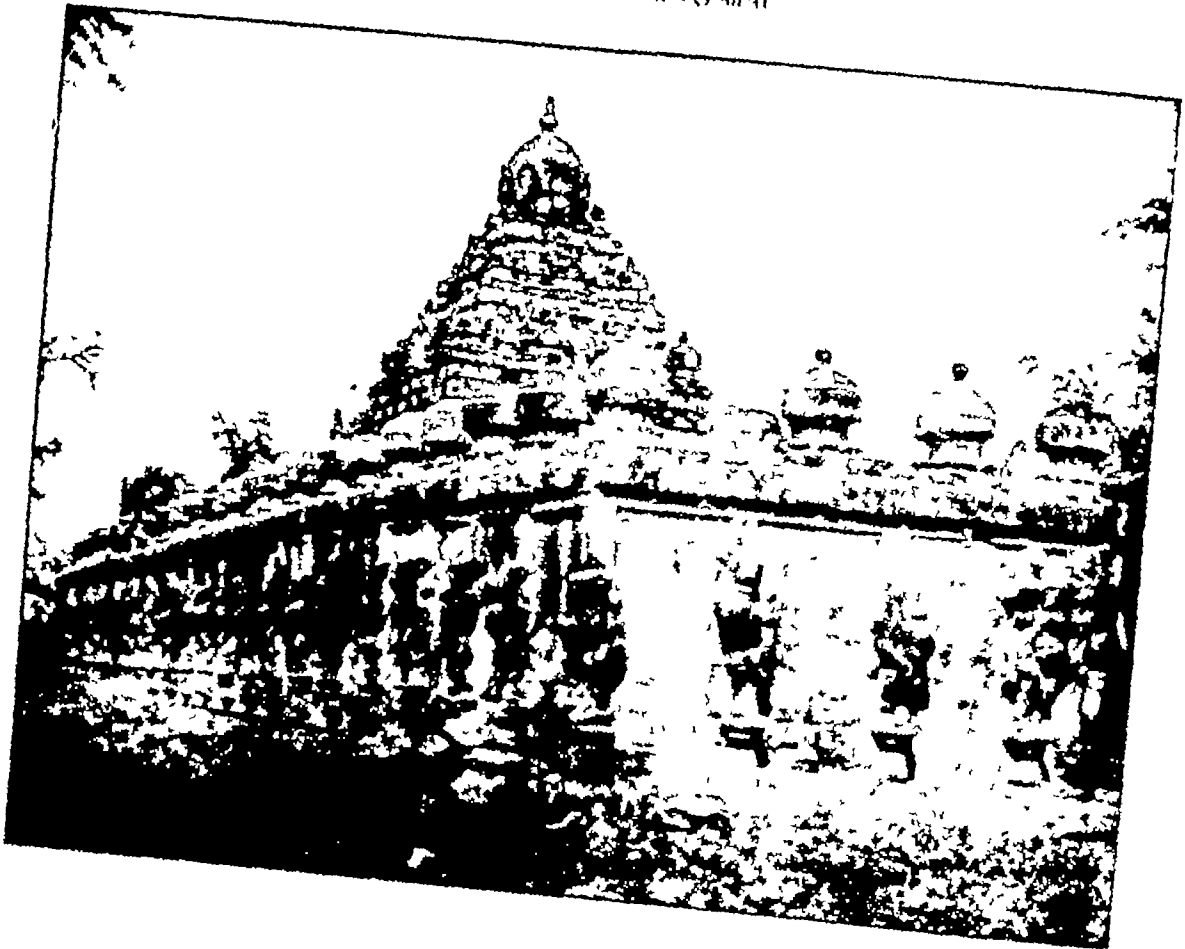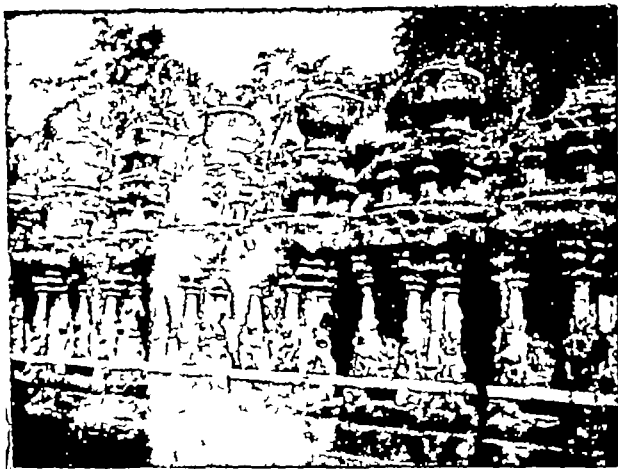
-३ कैलाशनाथ मन्दिर के आँगन की दीवार

केन्द्र की एक निजी कला-पद्धति विकसित हुई।

खजुराहो के भव्य मन्दिरों का निर्माण ६५० ई० और १०५० ई० के मध्य हुआ था। कन्दरिया महादेव मन्दिर की ऊँचाई का प्रभाव, उसके गहरे तहखाने और मीनार को दोहरा कर देने से कई गुना बढ़ जाता है। पुष्प तथा मानवी प्रतिमाओं म इसके सौन्दर्य में और भी चार चाँद लग जाते हैं (चित्र २४)।

मध्य प्रदेश का सुन्दरतम तथा सबसे अधिक सुरक्षित मन्दिर १०५६ ई० और १०८० ई० के बीच उदयपुर में निमित उदयेश्वर मन्दिर है।

२४ कन्दरिया महादेव मन्दिर, खजुराहो
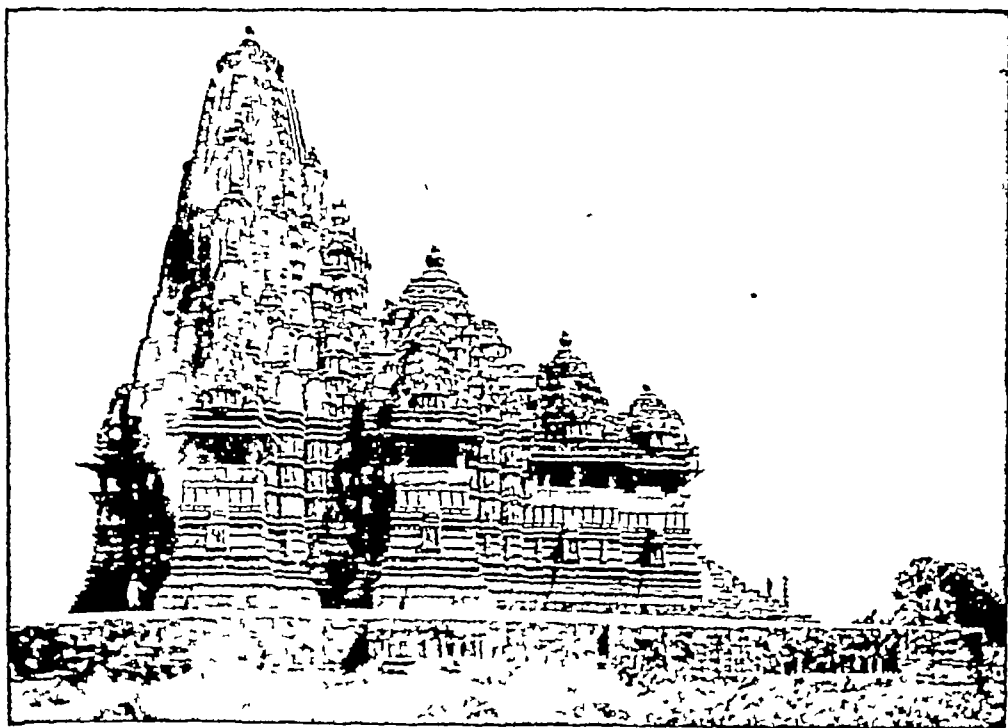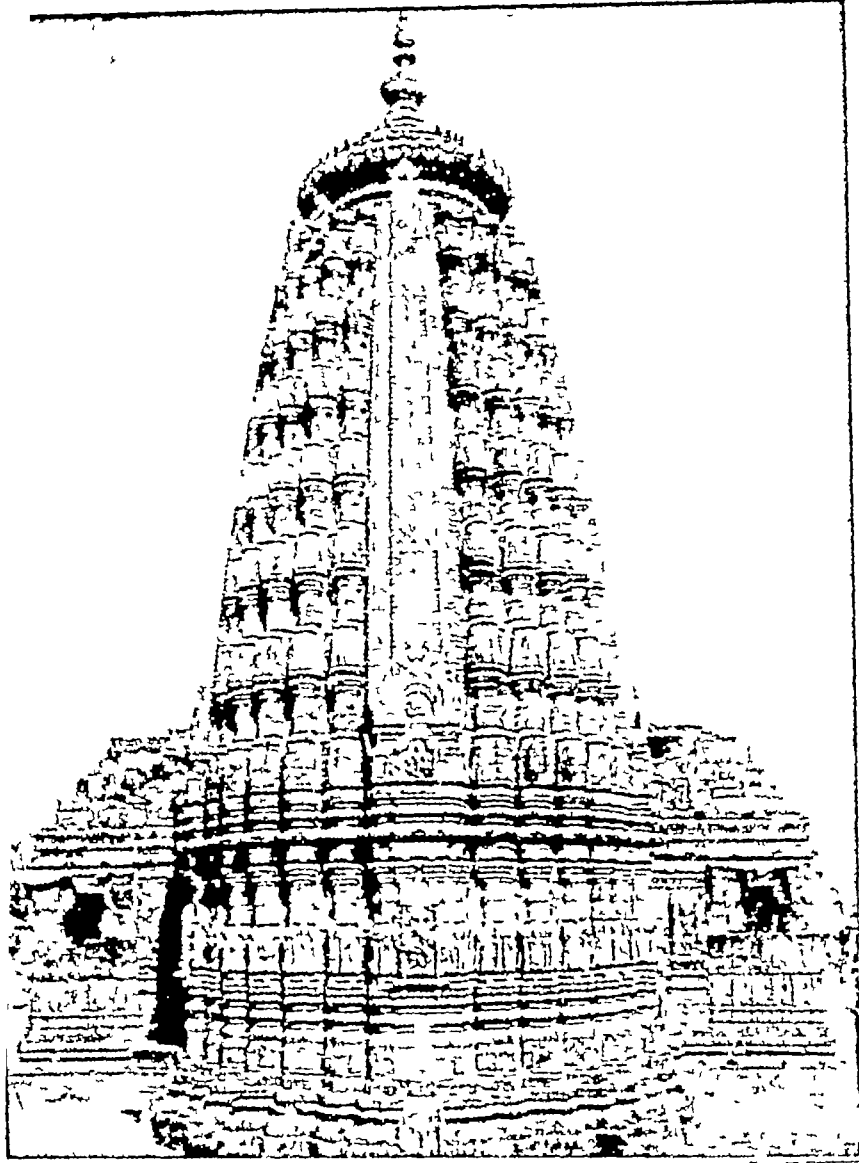
२५
उदयेश्वर मन्दिर, उदयपुर

२६
सिद्धपुर में रुद्रमल मन्दिर, पाटन

इसका शिखर चार संकीर्ण पट्टिकाओं से अलंकृत है, जो पृथ्वी से लेकर मन्दिर की पूरी ऊँचाई तक चली गई है (चित्र २५)।

इसी समय गुजरात की भी प्रसिद्धि उसके कलापूर्ण और अत्यधिक अलंकृत मन्दिरों के कारण बढ़ी। सिद्धपुर का प्रसिद्ध रुद्रमल मन्दिर सिद्धराज ने (१०९३ ई० से ११४३ ई०) बनवाया था (चित्र २६)।

आबू पर्वत पर स्थित प्रसिद्ध जैन मन्दिरों में विमल शाह का बनवाया हुआ मन्दिर आदि-नाथ का तथा वस्तुपाल और तेजपाल का
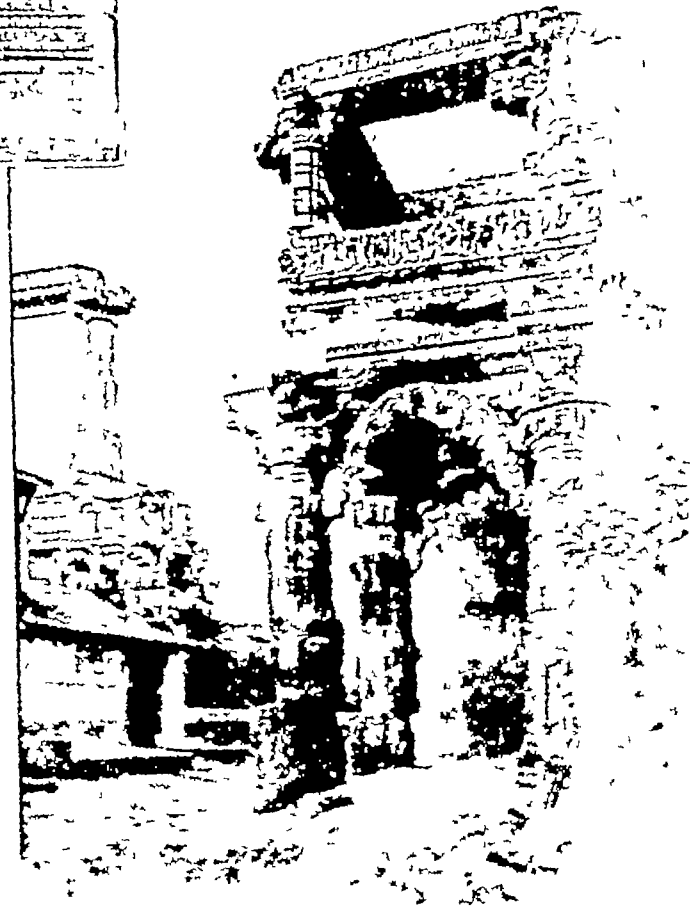
२७
विमलशाह का मन्दिर, आबू पर्व
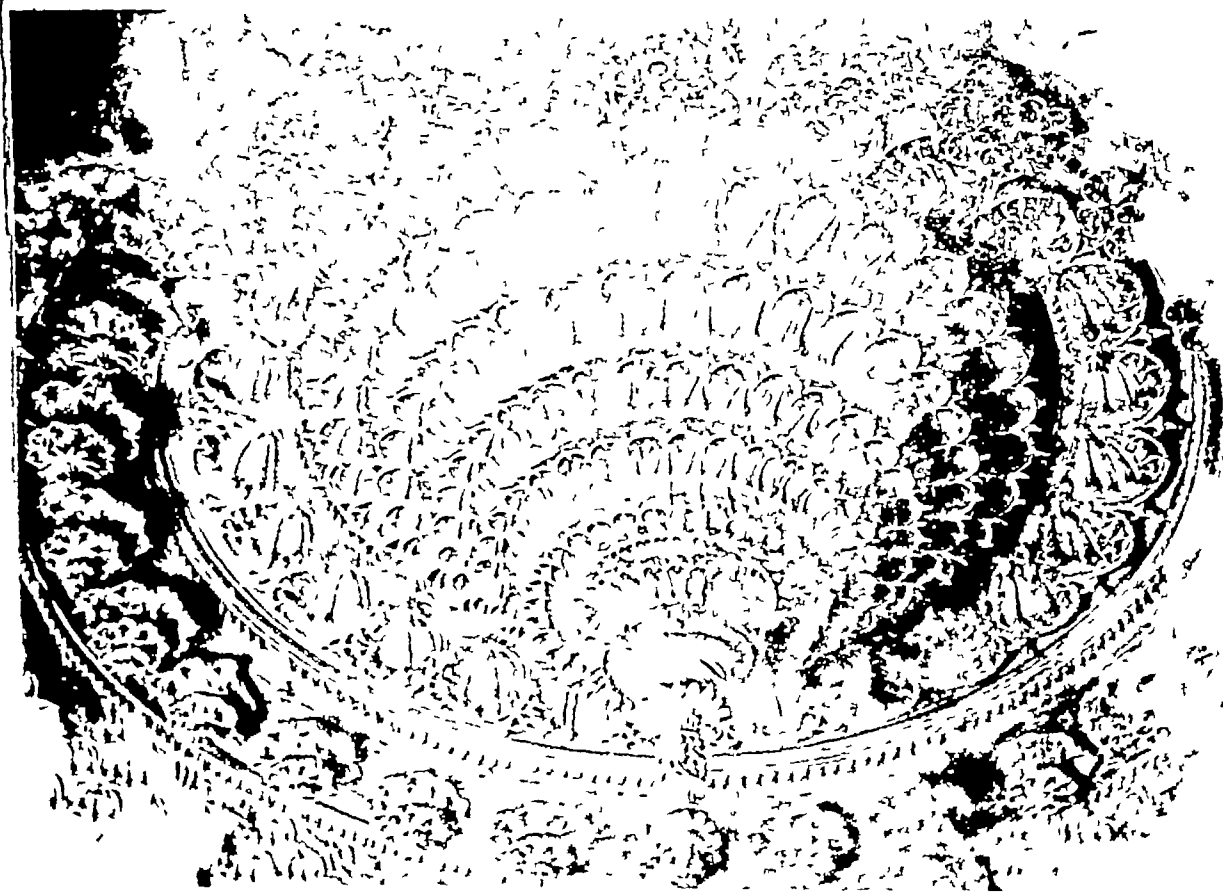
२८
तेजपाल मन्दिर की छत, आबू पर्वत

१२३२ में बनवाया हुआ मन्दिर (चित्र २८) नेमिनाथ को समर्पित किया गया है। यह मन्दिर संगमरमर के बने हुए हैं। कजिन्स ने इनको देखकर कहा था—"मन्दिर की छतों, स्तम्भों, तोरणों, कतारों और आलों की बारीक पच्चीकारी में सुन्दर अलकरण द्वारा इनमें जो प्राण प्रतिष्ठा होती है वह यथार्थ में अनुपम है। सहज ही टूटने वाला, बारीक, स्वच्छ, संगमरमर की सीप के समान पालिश समस्त कला को पराभूत कर देता है। उसके कुछ नमूनों में तो सौन्दर्य स्वप्न जैसे साकार हो उठे हैं।"

७वीं से १२वीं शताब्दी में बने हुए उड़ीसा के मन्दिर नागर शैली के विकास का पूर्ण दर्शन कराते हैं। परशुरामेश्वर के शिव मन्दिर में नीची परन्तु दोहरी छत का मण्डप है, जिसकी दीवारें ठोस हैं और छत के बीच में प्रकाश आने के लिए झरोखे बने हुए हैं। शिखर की ऊँचाई के कारण लिंगराज का महान मन्दिर (चित्र २६) अत्यन्त प्रभावोत्पादक दिखाई पड़ता है। यह प्रभाव इसके सुदृढ़ पार्श्व भागों की खड़ी रेखाओं के कारण और भी अधिक बढ़ जाता है। सन् १२३८ और १२६४ के मध्य निर्मित कोणार्क के सुन्दर सूर्य मन्दिर में और उड़ीसा के अन्य मन्दिरों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता

२६ लिंगराज मन्दिर, भुवनेश्वर
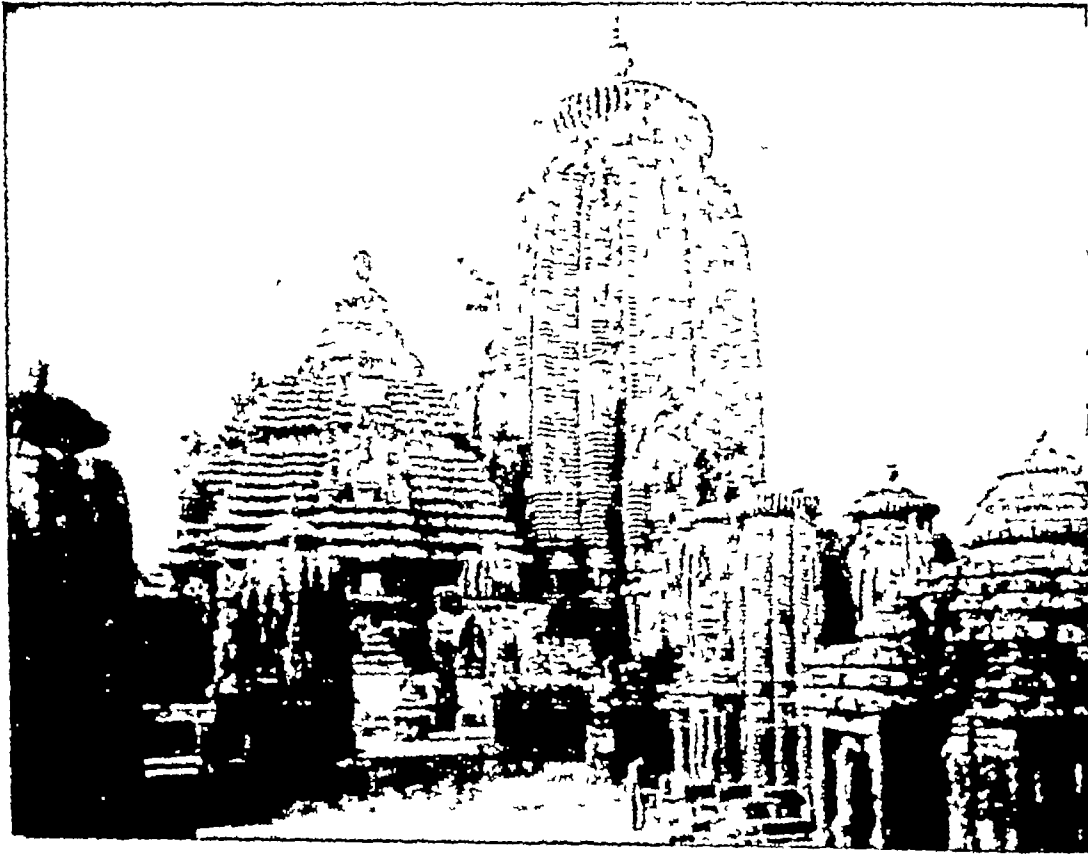
३० सूर्य मन्दिर, कोणार्क

तीन भागों में विभाजित मण्डप अथवा जगमोहन (चित्र ३०) की छत है। इसमें तथा उड़ीसा के कतिपय अन्य मन्दिरों में आगारिक मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इसकी सुन्दर मूर्तियाँ तथा अन्य अलंकरण सभी दर्शकों को मुग्ध कर लेते हैं।

उत्तरकालीन चालुक्य शैली के मन्दिर धारवाड, मैसूर और दक्षिण भारत में दूर-दूर तक बिखरे पड़े हैं (चित्र ३१, ३२ तथा ३३)। जिन मन्दिरों की कला पूर्णरूप से विकसित है, उनका नक्शा तारे के आकार का है, और वह ऊँचे कम परन्तु विस्तृत अधिक है। उनकी विशेषता यह है कि एक मध्य हॉल के चारों ओर तीन मन्दिर हैं, पिरामिड के आकार की मीनारें हैं, शानदार वातायन हैं और सिलिण्डर-नुमा चमकते हुए स्तम्भ हैं।

१२वीं शताब्दी के बाद उत्तर मध्यकाल में हिन्दू राजाओं ने राजपूताना और बुन्देलखण्ड में अनेक विशाल प्रासाद बनवाए। ग्वालियर का विशाल राजप्रासाद, जिसका कुछ भाग (सन् १४८६-१५१६) मानसिंह ने बनवाया था, अपनी दीवार, मीनारों और भारी-भरकम द्वारों के लिए प्रसिद्ध है। दतिया में वीरसिंह का बनवाया हुआ १७वीं शताब्दी का भव्य प्रासाद हिन्दू वास्तुकला का सुन्दरतम उदाहरण है (चित्र ३४)। अम्बर के महल का निर्माण भी १७वीं शताब्दी में हुआ था। विशाल बुर्जों वाला जोधपुर का किला और पुराना महल

उपलब्ध हिन्दू वास्तुकला का अत्यन्त सुन्दर नमूना है।

अब दक्षिण भारत की वास्तुकला पर एक दृष्टि डालें। ८५० और १६०० ई० के मध्य चोल वंश, पाण्ड्य वंश, विजयनगर के राजा और तंजावूर तथा मदुराइ के नायकों ने मन्दिर निर्माण कला का पृष्ठपोषण किया। पाण्ड्य काल के विशाल गोपुरम् श्री रंगम, मदुराइ और कुम्बकोणम में पाए जाते हैं। ये ऊँची-ऊंची मीनारें इस अनुपात में बनी हुई हैं कि मध्यस्थ मन्दिर इनके सामने दब सा जाता है (चित्र ३६)। विजयनगर काल के बड़े-बड़े स्तम्भों वाले मण्डपों के नमूने कांची, विजयनगर और वेलूर आदि स्थानों पर पाए जाते हैं। विजयनगर के मन्दिरों में सबसे सुन्दर मन्दिर विठोवा का मन्दिर है जो १५६५ ई० में बनकर पूरा हुआ था। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इसके स्तम्भ, मण्डप और पत्थरों को काटकर बनाया हुआ रथ है। १७वीं शताब्दी के मदुराइ के नायक भी भवन निर्माण कला के अत्यन्त प्रेमी थे। तिरुमल

३१
चेन्ना केशव मन्दिर की पच्चीकारी से युक्त छत, बेलूर

३२
होयसलेश्वर मन्दिर, हालेबीड
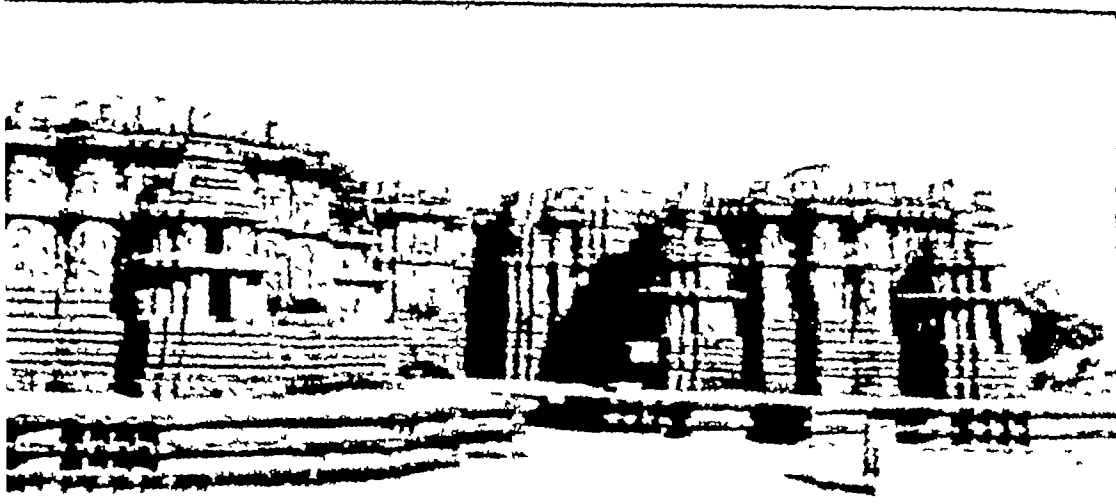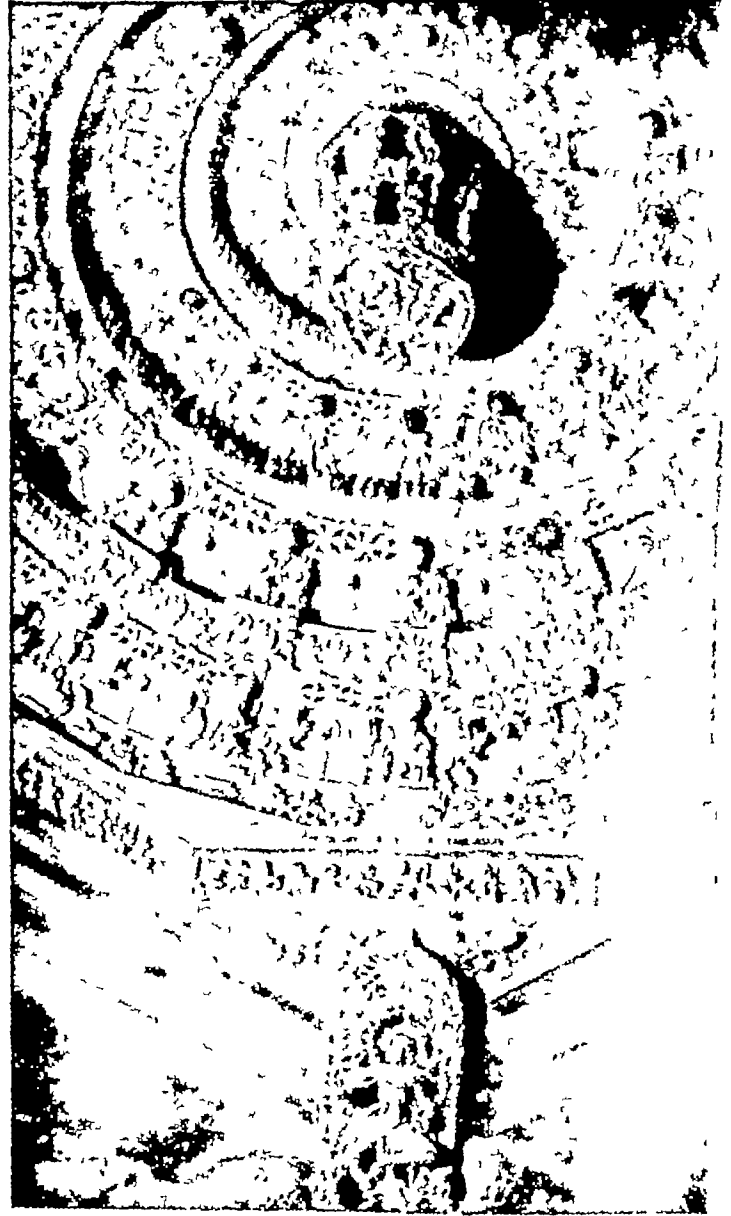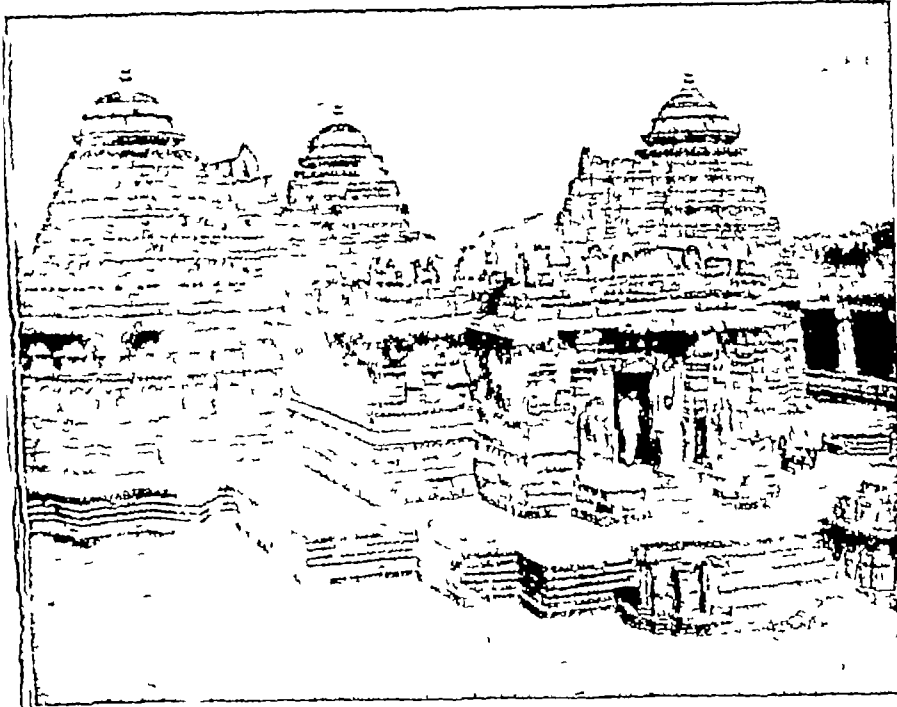
३३
केशव मन्दिर,
सोमनाथपुर

नायक (१६२३-१६५६) ने विशाल मीनाक्षी मन्दिर के सामने (चित्र ३७) वसन्त मण्डप बनवाया था। इसमें सपाट छत का एक बरामदा है, जिसके तीनों पार्श्व में आने-जाने के मार्ग हैं।

२

१२वीं शताब्दी के अन्त में उत्तर भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ दो विपरीत संस्कृतियों का समन्वय हुआ और उनकी संयुक्त
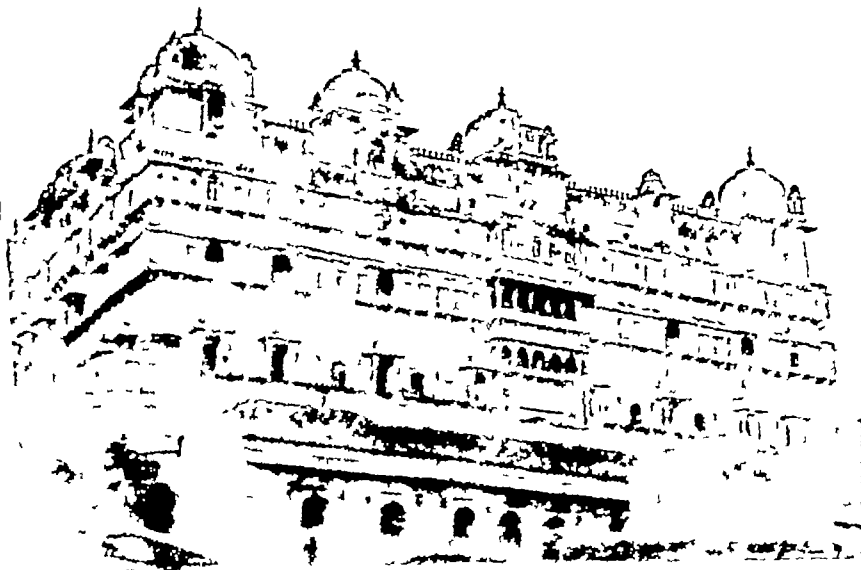
३४
वीरसिंह का महल,
दतिया

३५ अम्बर का महल
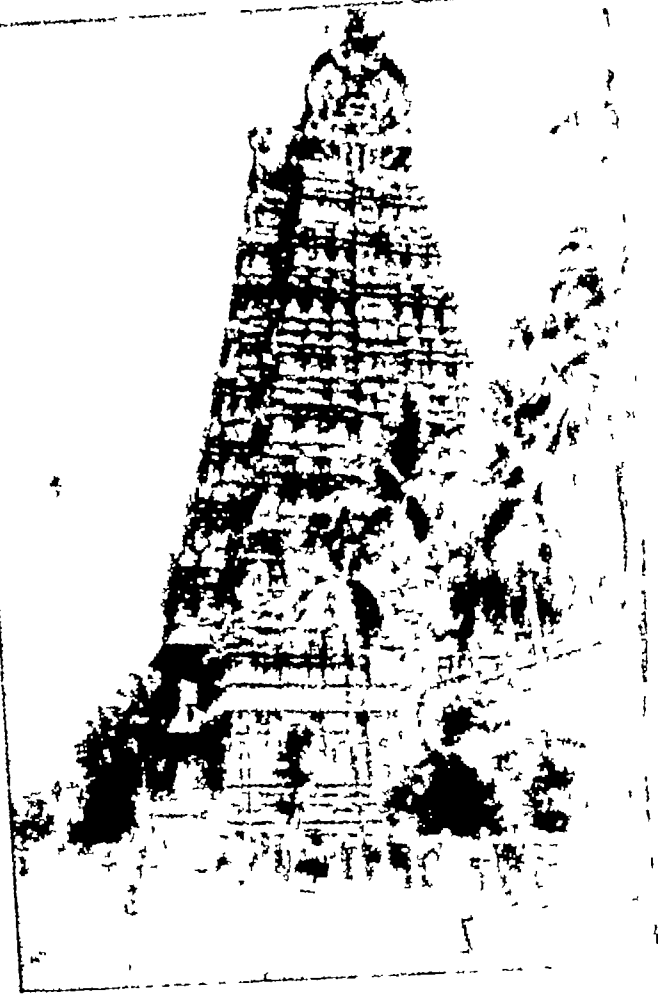
३६ मीनाक्षी मन्दिर मदुराइ

३७ मीनाक्षी मन्दिर का पच्चीकारी से युक्त दक्षिणी बरामदा, मदुराइ
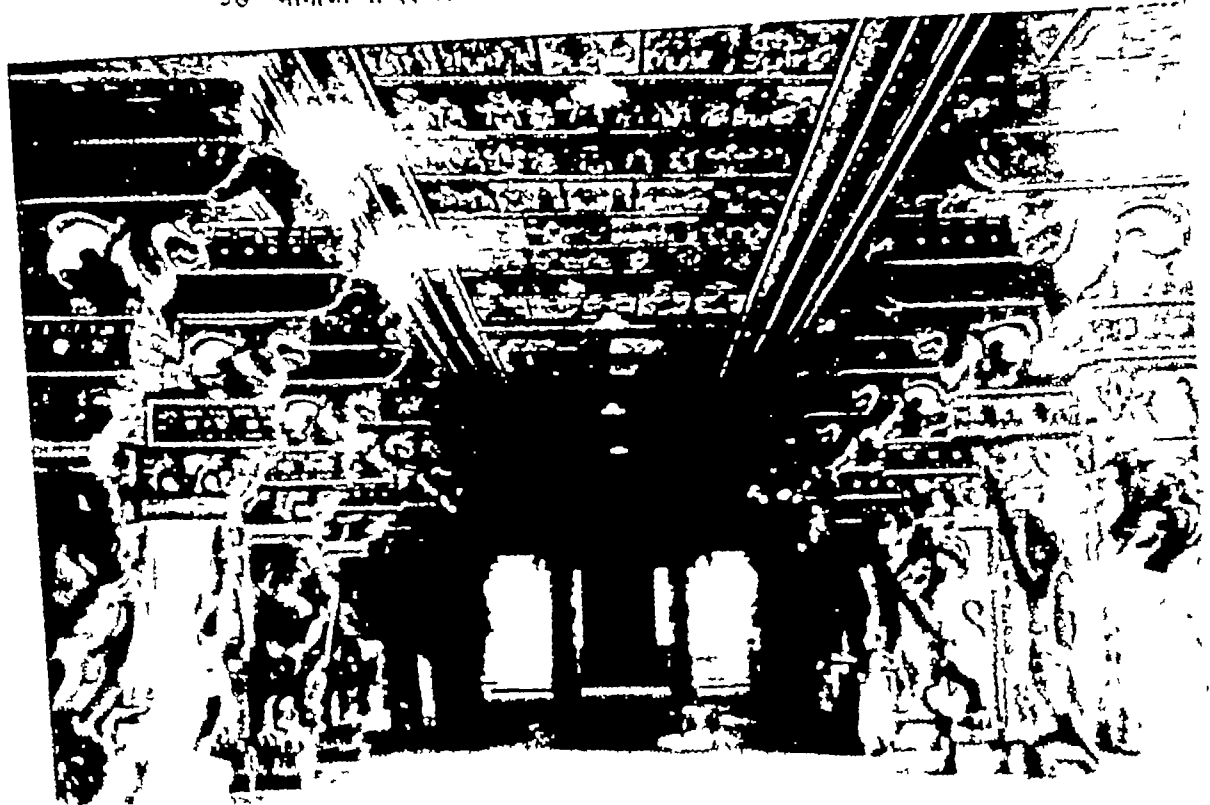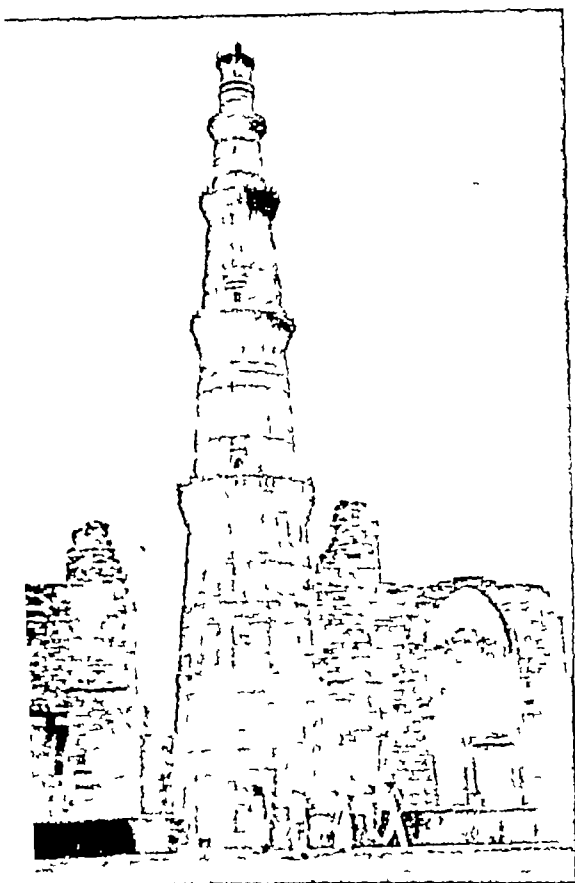
३८ कुतुब मीनार दिल्ली

प्रतिभा से भारत में मुस्लिम कला का प्रादुर्भाव हुआ। सीरिया, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका और सासानियन फारस से इस कला को प्रेरणा मिली और अपने निजी मानदण्डों के अनुसार विकसित विचार व भावनाओं के अनुरूप इसकी वास्तुकला का स्वतंत्र विकास हुआ। साथ ही यह भी सच है कि मुस्लिम वास्तुकला के विकास पर स्थानीय मुस्लिम शैली का प्रभाव पड़ा। यह शैली प्रधानतया देशी आदर्शों पर आधारित थी, तथा इस पर दृढ़ और स्वतन्त्र राष्ट्रीयता की छाप थी।

तुर्क और अफगान काल में (लगभग १२००-१५०० ई०) मुस्लिम वास्तुकला के विकास में दिल्ली का स्थान महत्त्वपूर्ण था क्योंकि मुसलमानों ने सबसे पहले यहीं अपनी शानदार मस्जिदें बनवाई थीं। कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपनी प्रसिद्ध जामा मस्जिद का निर्माण सन् ११९१ में करवाया था। इसमें कुछ हिन्दू विशेषताओं का भी संयोग है। सन् १२३० में अल्तमश ने इस मस्जिद को दुगुना बड़ा करवा दिया और अलाउद्दीन ने इसमें तीसरा आँगन बनवाने के साथ-साथ उत्तरी प्रार्थना-भवन को भी दुगुना करवा दिया। मस्जिद का प्रमुख अंग कुतुब मीनार (चित्र ३८) है। प्रारम्भ में इसका निर्माण इसलिए हुआ था कि इस पर चढ़कर मुल्ला अज़ान लगा सके, परन्तु बाद में यह विजय-स्तम्भ के रूप में माना जाने लगा।

सन् १२३६ से लेकर १२९६ में अलाउद्दीन के राज्यारोहण तक सुलतान वंश की वास्तुकला के इतिहास में बलबन के मकबरे के अतिरिक्त (१२६६-८६) और कोई इमारत नहीं मिलती। अलाउद्दीन के समय का सन् १३११ में बना हुआ प्रसिद्ध स्मारक अलाई दरवाज़ा है। यह दरवाज़ा कुवात-उल-इस्लाम मस्जिद में जाने के लिए प्रवेश द्वार था।

तुग़लक काल (१३२०-१४१३) में दिल्ली की वास्तुकला में एक नवीन परिवर्तन आया, जिसके परिणामस्वरूप अत्यधिक अलंकार प्रदर्शन का स्थान गाम्भीर्य ने ले लिया। गयासुद्दीन (१३२१-२५) का बसाया हुआ तुग़लकाबाद नगर अपनी साईक्लोपियन नमूने की दीवारों, दीर्घाकार और ऊँचे बुर्जों तथा सकीर्ण प्रवेश द्वारों के कारण प्रसिद्ध है। गयासुद्दीन के मकबरे का

आकार किसी द्वीप पर सुरक्षित दीवारों और दृढ़ अनुपात में बने हुए किले के समान है। तुगलक वंश में फीरोज़शाह वास्तुकला का सबसे बड़ा प्रेमी था और उसने जनता के लाभार्थ, नगर, किले, महल, मकबरे तथा अन्य अनेक इमारतों का निर्माण करवाया। जौनपुर के अतिरिक्त, उसने दिल्ली में फीरोज़ाबाद का किलेनुमा महल बनवाया था जिसमें १२० विश्राम-गृह थे। इस समय की वास्तुकला का सबसे बड़ा दोष उसकी थका देने वाली पुनरुक्ति है।

दिल्ली में फीरोज़शाह द्वारा निर्मित अनेक इमारतों में फीरोज़शाह कोटला का स्थान

३९ फ़ीरोज़शाह कोटला में अशोक स्तम्भ, दिल्ली

४० जामा मस्जिद, अहमदाबाद
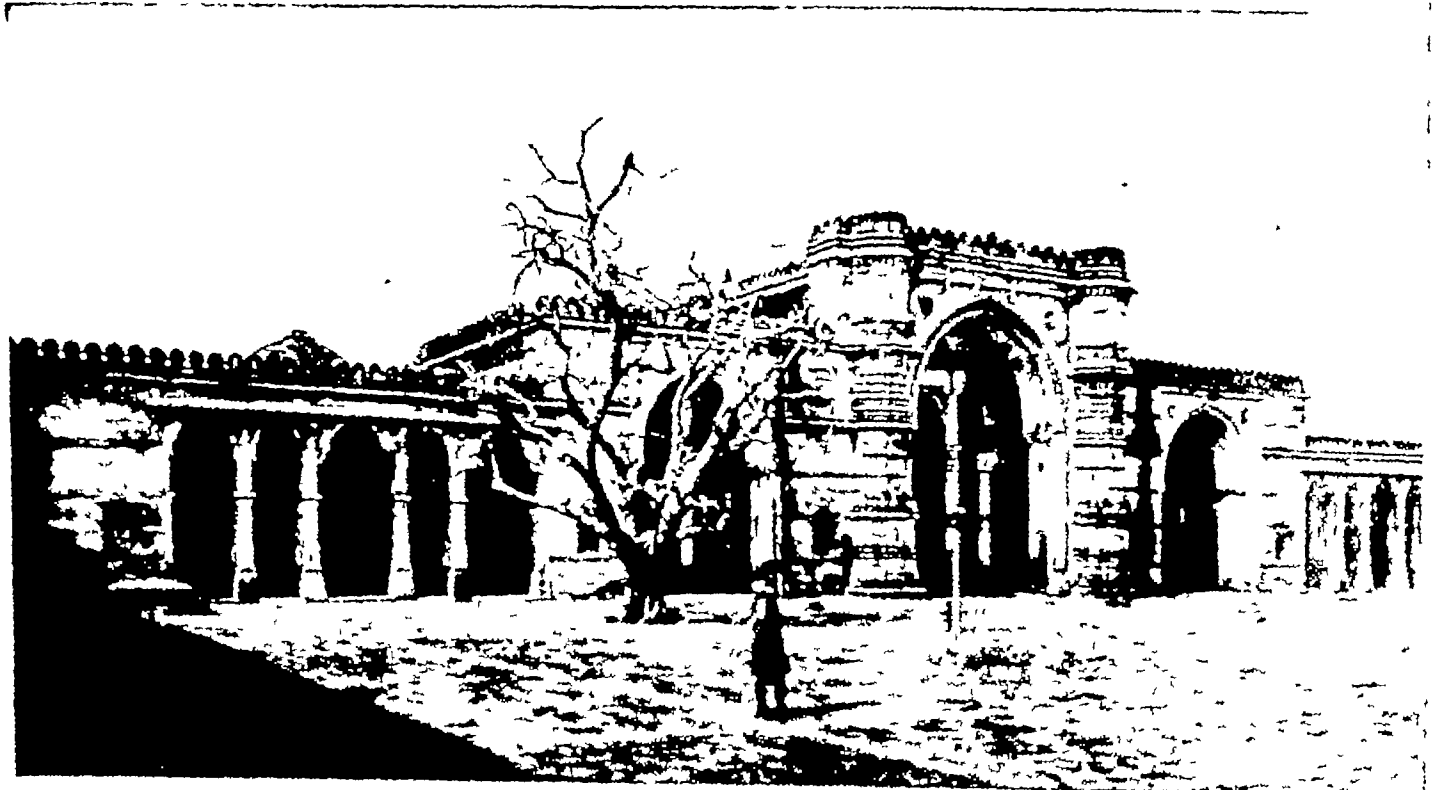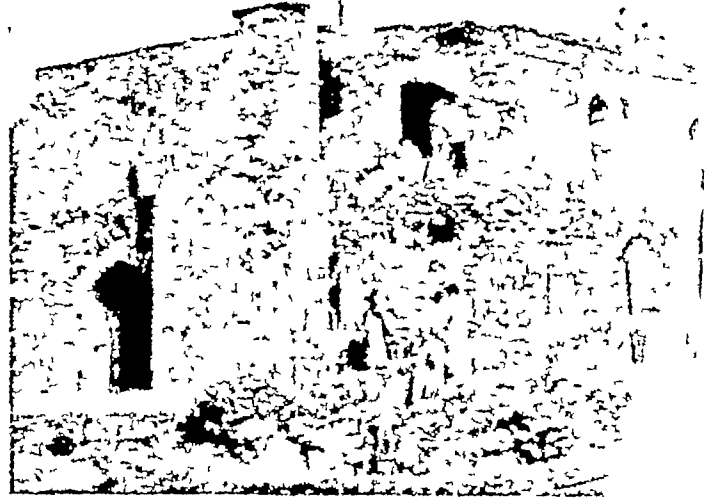
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसको उसने नए बसाए गए फीरोज़ाबाद नगर में दुर्गनुमा महल के रूप मे बनवाया था। इस किले के अन्दर बने हुए स्मारकों में दो मञ्ज़िल वाली और प्रभावोत्पादक इमारत जामा मस्जिद का नाम उल्लेखनीय है। मस्जिद के सामने जो अशोक स्तम्भ खड़ा हुआ दिखाई देता है, वह (चित्र २६) अम्बाला ज़िले के तोपरा नामक स्थान से लाया गया था तथा मेरठ ज़िले से लाया हुआ स्तम्भ कुश्क-ई-शिकार नामक महल में स्थापित किया गया था। इस सम्बन्ध में फीरोज़शाह के प्रधान मन्त्री खान ए-जहा तिलंगानी का भव्य मकबरा भी उल्लेखनीय है। इनका देहान्त सन् १३६८ मे हुआ था। यह मकबरा निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह के कुछ दक्षिण में बना हुआ है।

सैयद और लोदी वंश के राजाओं की भवन-निर्माण रुचि के विषय में अधिक कुछ कहने के लिए नहीं है। उनकी वास्तुकला की विशेषता यह थी कि अलंकरण को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उसमे नीला रंग लिए हुए टाइलों का प्रयोग होता था, छतें अत्यन्त शानदार बनाई जाती थीं और गुम्बदों पर कमल-पुष्पों की चित्रकारी बनी रहती थी।

जहाँ एक ओर उपरोक्त आधारों पर दिल्ली में मुस्लिम वास्तुकला का विकास हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर प्रान्तीय राजधानियों में १३वीं तथा १५वीं शताब्दी के लगभग उनकी स्वतन्त्र वास्तुकला भी विकसित हो रही थी। मुहम्मद बख्तियार खाँ के प्रयत्नों से ११६८-६६ में बंगाल मुस्लिम राज्य का अंग बन गया था। देश के इस भाग मे भवन निर्माण के लिए ईंट, लकड़ी और बाँस का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता था। मुसलमानो को बंगाल की वास्तु-कला में कुछ विशिष्टताएँ प्रतीत हुई जैसे छोटे-छोटे अनुपातों में बने हुए ईंटों के चौकोर स्तम्भ, उत्कीर्ण और पच्चीकारी से युक्त विशेष प्रकार के धरातल तथा उनमें बने हुए अलंकरण इत्यादि।

गौड़ और पाण्डुआ की आरम्भिक मुस्लिम वास्तुकला के सम्बन्ध में, जहाँ मुसलमान शासकों ने अनेक धार्मिक स्मारक और इमारतें बनवाई थीं, हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। दूर-दूर तक विख्यात अदीना मस्जिद को सिकन्दरशाह ने (१३५७-८६) पाण्डुआ में बनवाया था। यह एक विशाल और खुला हुआ चतुष्कोण आँगन है और इसकी लम्बाई चौड़ाई के दुगुने से भी अधिक है। यह चारों तरफ से बिलकुल समान आकार के मेहराबदार स्क्रीन और मेहराबदार द्वारों से घिरा हुआ है। इसकी एकरसता बहुत कुछ इस बात से दूर हो जाती है कि उसे इसका एक मेहराबदार द्वार दूसरों की अपेक्षा कुछ ऊँचा है। ३७५ द्वारों में विभाजित इसका बरामदा भी इसी नमूने का बना हुआ है। पाण्डुआ का दूसरा आकर्षक स्मारक एक-लाखी मकबरा है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसे जलालुद्दीन मुहम्मदशाह ने (१४१४-१४३१ ई०) बनवाया था। गौड़ में बनी हुई आकर्षक इमारतों में १४५६ ई० में निर्मित दाखिल दरवाज़े का नाम उल्लेखनीय है। ईंट और पक्की मिट्टी की इमारतों का यह एक अनुपम नमूना है। गौड़ में (१४७० ई०) तान्तीपाड़ा मस्जिद वहाँ की सर्वोत्तम इमारत समझी जाती है, तथा इसके अलंकरण को देखकर इस बात की पुष्टि और भी अधिक हो जाती है।

जब अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण किया, तो उसने वहाँ की सुन्दर वास्तु-कला को यथेष्ट विकसित रूप में देखा था। उस शैली में चौड़ाई, विस्तार और सुरुचि होती थी। गुजरात की स्थानीय मुस्लिम वास्तुकला

की नींव १४वीं शताब्दी में पड़ी थी, परन्तु अहमदशाह के खानदान के पूर्व उसका पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। अहमदशाह ने अहमदाबाद नामक नगर बसाया था, और वहाँ पर जामा मस्जिद (चित्र ४०) और तीन दरवाज़ा जैसे अनेक प्रसिद्ध स्मारक बनवाए थे। तीन दरवाज़ा महल के बाहरी आँगन में प्रविष्ट होने के लिए द्वार था। यह द्वार अपनी कलापूर्ण बनावट और मेहराबों पर सुन्दर काम के कारण दर्शनीय है।

मुहम्मदशाह द्वितीय (१४४२-५७ ई०) के बनवाए स्मारकों के अन्तर्गत सरखेज में अहमदशाह का मकबरा गुजरात में सबसे बड़ी इमारत है, और अपनी शुद्ध सादगी के लिए प्रसिद्ध है और स्तम्भों से युक्त हॉल के नाते उसे अधिक अच्छा बनाना सम्भव नहीं है (चित्र ४१)।

मुहम्मद बेगड़ का शासन-काल (१४५९-१५११) अपनी भव्य वास्तुकला के लिए विख्यात है। उसने जूनागढ़, खेदा और चाँपानेर नामक

४१ सरखेज में शेख अहमद का मकबरा, अहमदाबाद
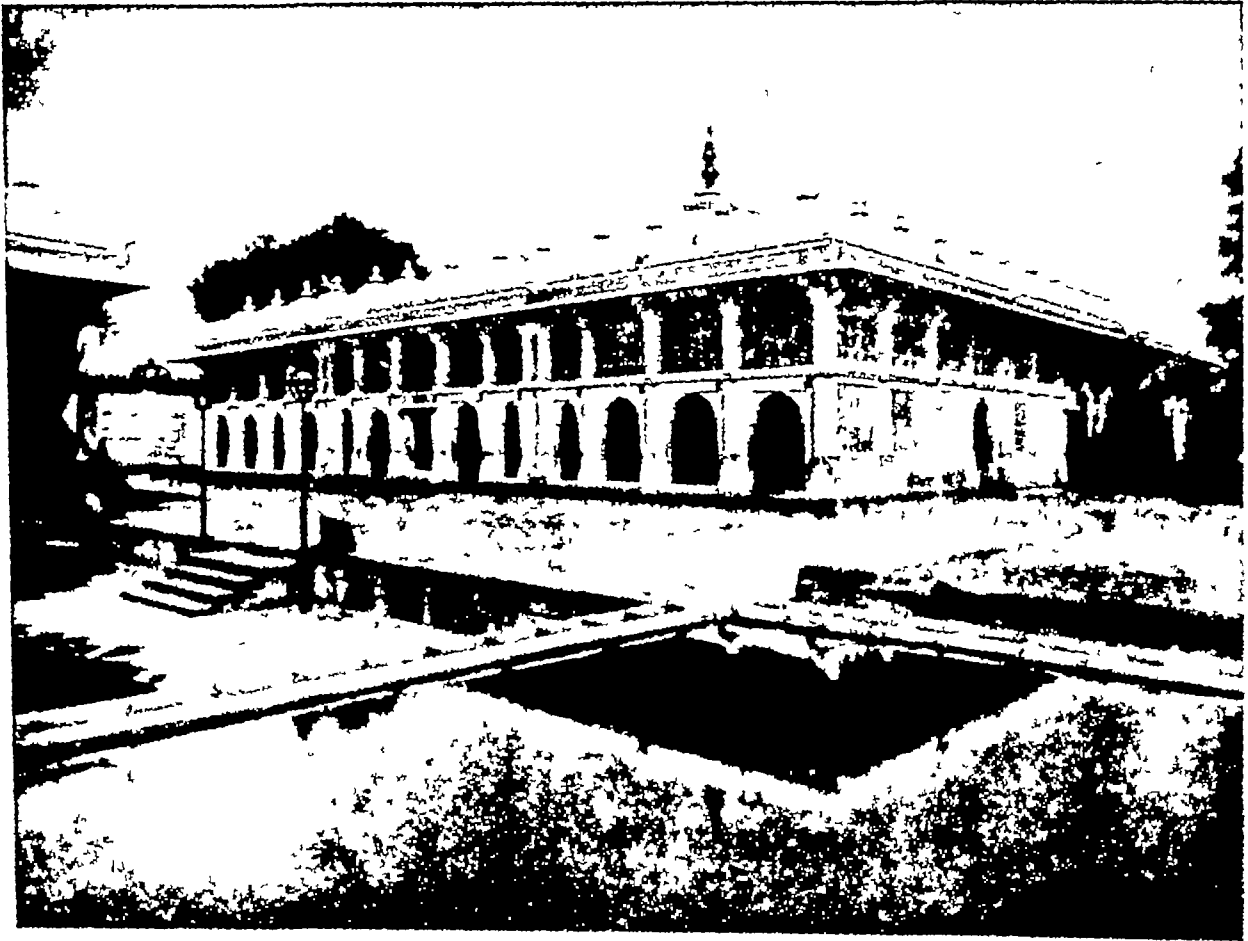
नए नगर बसाए थे। उसने नए किलों, बड़ी सड़कों और सुन्दर भवनों का निर्माण करवा कर अहमदाबाद को और भी अधिक सुन्दर बना दिया था। चाँपानेर के स्मारकों में जामा मस्जिद सर्वोत्कृष्ट इमारत है, जो गुजरात की किसी भी मस्जिद से समता कर सकती है। अहमदाबाद में सरखेज नामक स्थान पर उसके महल के खण्डहरों में उसके सीढ़ीदार घाट और छतें, स्तम्भों से युक्त बरामदे और वातायन किसी भी दर्शक का मन मोह लेते हैं। रानी शिप्री की मस्जिद (चित्र ४२) का नाम भी उल्लेखनीय है, जो फर्ग्यूसन के अनुसार संसार की सुन्दरतम इमारत है और मणि के समान चमकती हुई खुदाई के लिए प्रसिद्ध है। इस कला की पूर्णता के चिन्ह सिदी सैयद मस्जिद में भी पाए जाते हैं।

विकास की प्रारम्भिक स्थिति में धार तथा माण्डू की स्थानीय कला शैली शाही राजधानी की शिल्पकला पर आधारित थी, परन्तु साथ ही वह अपने आकार की विशालता और विशिष्टता के कारण प्रसिद्ध भी थी। माण्डू के हिंडोला महल की बनावट अंग्रेज़ी 'टी' के आकार की है, जिसमें 'टी' के निम्न भाग के सदृश दरबार हॉल है और अन्त पुर के लिए

४२ रानी शिप्री की मस्जिद, अहमदाबाद
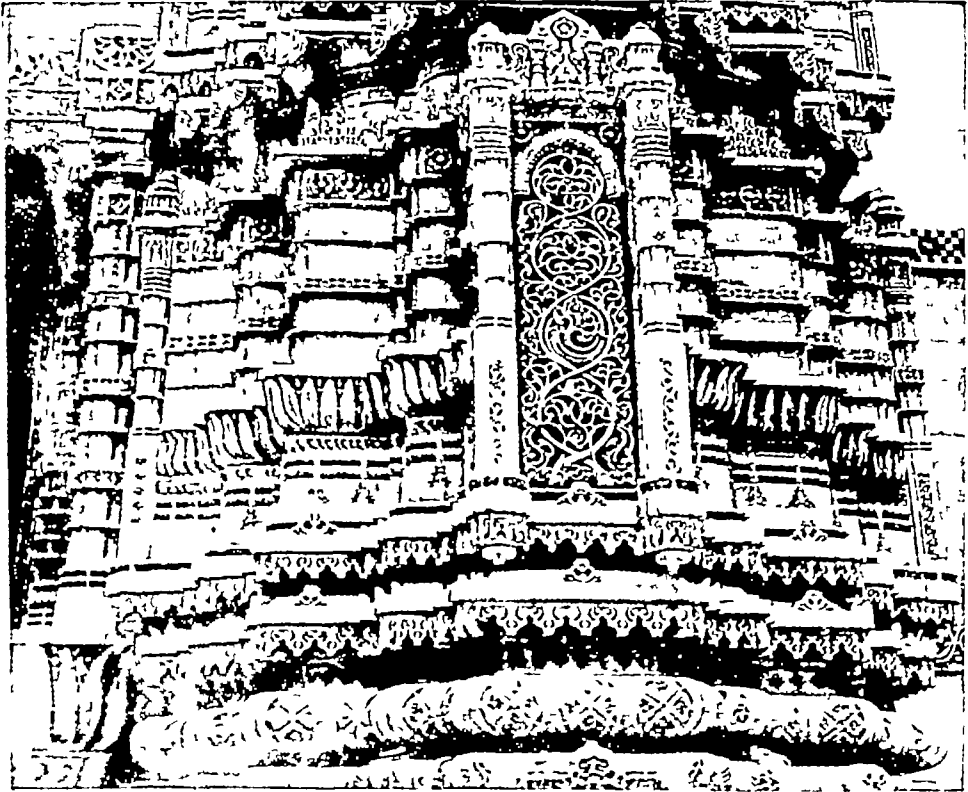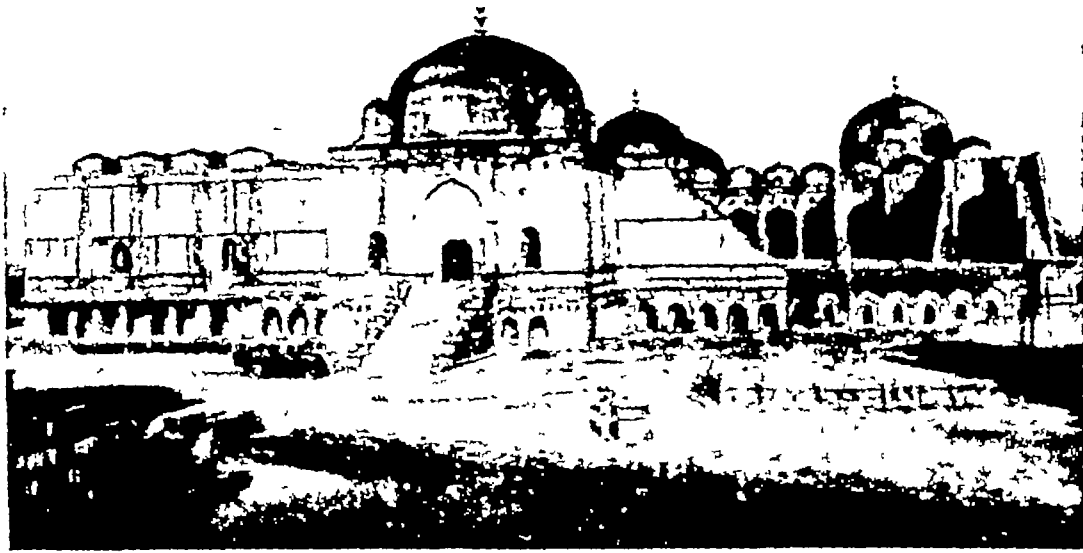
४३ जामा मस्जिद, माण्डू

४४ अटाला मस्जिद, जौनपुर

दो मंज़िलों में बने हुए छोटे-छोटे कमरों का समूह 'टी' के क्रास का काम करते हैं। माण्डू की जामा मस्जिद सुलतानी वास्तुकला का एक सुन्दर उदाहरण है (चित्र ४३)।

बनारस से कुछ ही दूर जौनपुर में शर्की राजाओं के बनवाए हुए कुछ सुन्दर स्मारक हैं। जौनपुर शैली में बना हुआ सर्वसुन्दर स्मारक १३७८ में बनी अटाला मस्जिद है। इस की शिल्पकला पर तुगलक काल की मस्जिदों का प्रभाव स्पष्ट है। यद्यपि यह अधिक अलंकृत है और इसके फाटक मन्दिर के सिंहद्वार के समान बने हुए हैं (चित्र ४४)।

उत्तर भारत की शिल्पकला के पश्चात जब हम दक्षिण भारत की शिल्पकला का अध्ययन करते हैं, तो पता चलता है कि जब तक दक्षिण भारत दिल्ली राज्य के अन्तर्गत रहा, उसकी शिल्पकला पर तुगलक अथवा खिलजी शैली का प्रभाव था। १३४७ में दक्षिण भारत में स्वतन्त्रता की पुनर्स्थापना के पश्चात भी बहमनी बादशाहों ने दिल्ली की शाही कला का अनुकरण किया, जिस पर यूरोप और फारस की शैलियों की स्पष्ट छाप थी। १३३६ में मोहम्मद तुगलक का बनवाया हुआ (चित्र ४५) दौलताबाद का किला उल्लेखनीय है।

गुलबर्गा में निर्मित (१३६७ ई०) प्रसिद्ध जामा मस्जिद की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं— बरामदों की चौड़ी और मोटी मेहराबें तथा छोटे मेहराबदार द्वारों से युक्त एक आँगन।

बीदर के स्मारकों में अहमदवली शाह का मकबरा सर्वोत्तम है। इसका आन्तरिक भाग फूलों की शैली में बने चित्रों से सुसज्जित है तथा गहरी नीली अथवा सिन्दूरी ज़मीन पर सुनहरे रंग से चित्रित लेख इसे और भी अधिक आकर्षक बना देते हैं (चित्र ४६)। दूसरा स्मरणीय स्मारक १४७२ में बीदर में निर्मित महमूद गावन का कालेज है। यह एक तिमंज़िली इमारत थी जिसमें एक मस्जिद, पुस्तकालय, भाषण-कक्ष, अध्यापकों के निवास-भवन और खुले आँगन के सामने बना हुआ एक छात्रावास था।

४५ दौलताबाद का किला

४८ अहमद वली शाह का मकबरा, बीदर
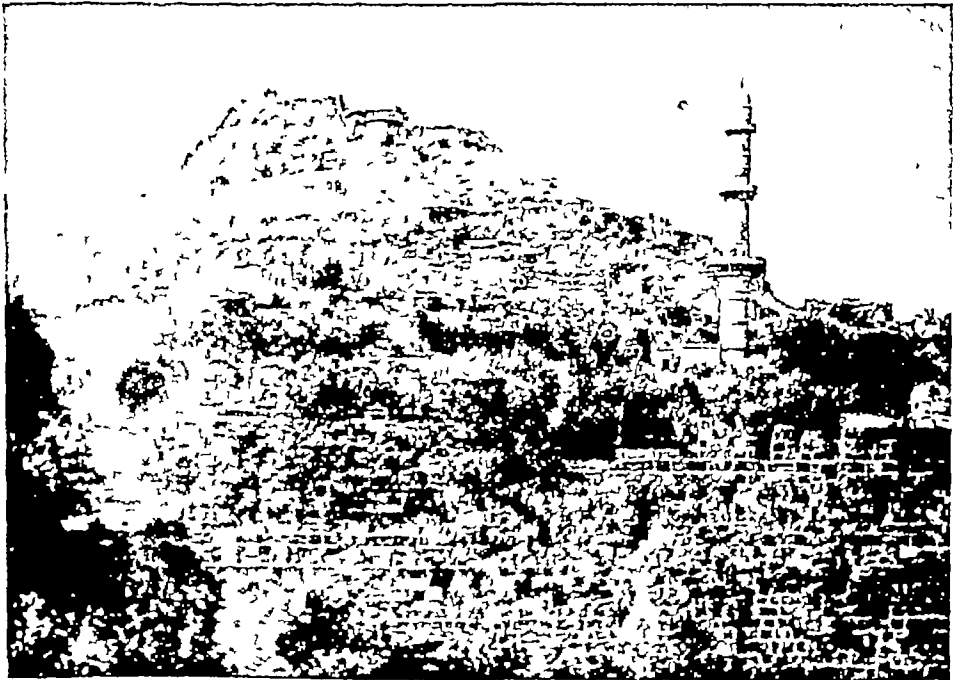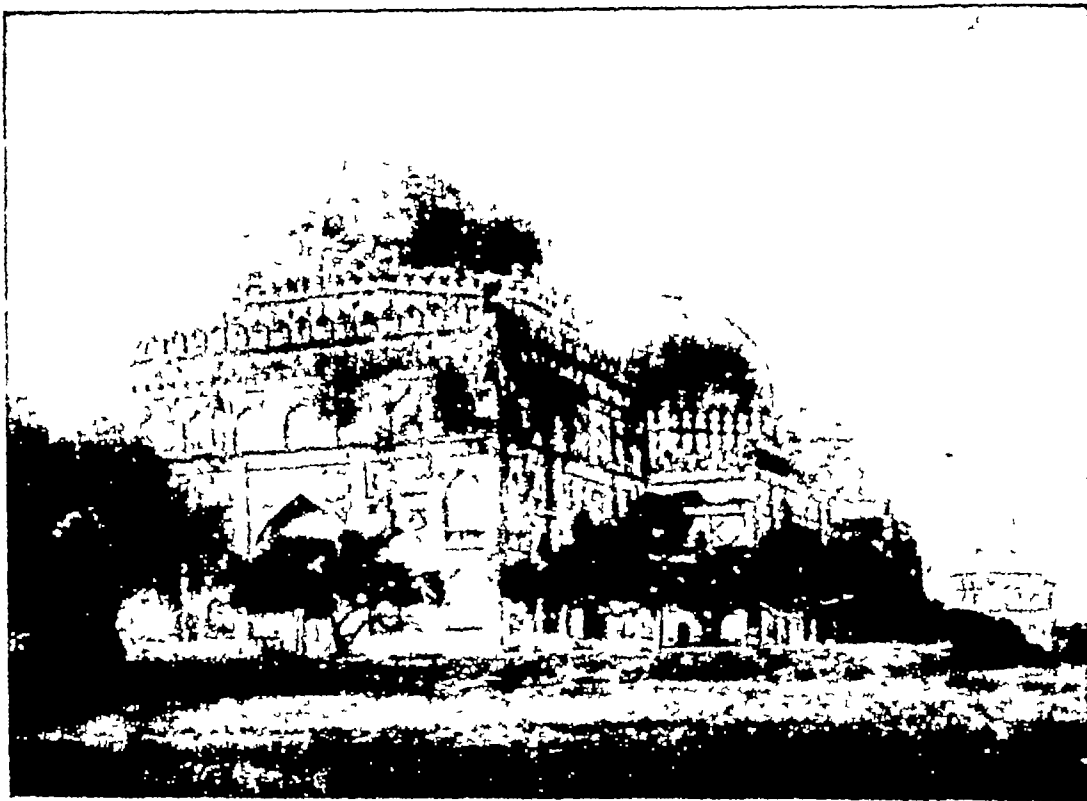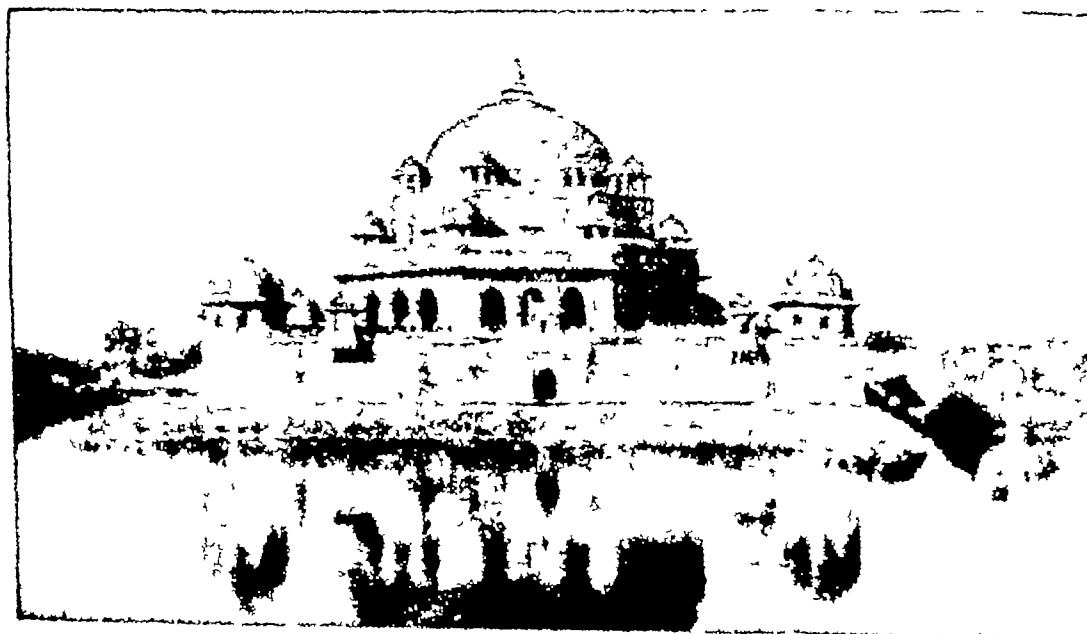
४७ शेरशाह का मकबरा, सहसराम

सभी लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि मुगल काल में भारत में कुछ सर्वोत्तम भवनों का निर्माण हुआ। फिर भी द्रष्टव्य है कि बाबर और हुमायूँ दोनों मुगल वास्तुकला को कोई योग नहीं दे पाए, तथापि महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मुसीबतों के उस झंझावात में सैयद और अफगान शिल्प-कला के अन्तर्गत कई सुन्दर स्मारक बने। सहसराम में बना शेरशाह का मकबरा भी, जो उस महान शासक की प्रतिभा और वास्तुकला का शाश्वत परिचायक है, ध्यान देने योग्य है। यह मकबरा एक आयताकार तालाब पर इस प्रकार बना है कि ऊपर की ओर पिरामिड के आकार की कम होती हुई एक तह सी जान पड़ती है। इस पर एक अर्धवृत्ताकार गुम्बद है। यद्यपि भवन की कुर्सी और छत चौकोर है, परन्तु मकबरा स्वयं अष्टकोणात्मक है। छत के दोनों ओर प्रवेश द्वारों पर सीढ़ियाँ हैं। आन्तरिक भाग में एक मेहराबदार बड़ा हॉल है। मकबरे में प्रवेश करने का मार्ग एक ज़ीने से होकर है।

शेरशाह के समय का दूसरा दर्शनीय स्मारक किला-इ-कुहना मस्जिद है। मस्जिद का सौन्दर्य विशेषरूप से इसके मुख भाग के पाँच मेहराबदार द्वारों के विभाजन में है। इसका शिल्प अनेक प्रकार की पच्चीकारी से शोभित है।

अकबर महान के राज्याभिषेक के साथ ही भवन-निर्माण कला में तीव्र गति आई। १५६४ के लगभग दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा बना (चित्र ४८)। इसकी एक आकर्षक तथा प्रमुख विशेषता यह है कि यह एक विशाल उपवन जैसे स्थान में स्थित है। इसकी समकोण आकार वाली छत चारों ओर से मध्य में पीछे को मुड़ी हुई है। प्रत्येक बरामदे में एक द्वार है। विशाल गुम्बद एक ऊँचे नगाड़े के ऊपर बना हुआ है। आन्तरिक भाग में एक बड़ा हॉल है जिसके चारों ओर बरामदों और गैलरियों के साथ छोटे छोटे कमरे हैं।

हुमायूँ के मकबरे के बाद अकबर के काल में बनी इमारतों में आगरा और लाहौर में बने अकबर के किलेनुमा महलों का स्थान सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है (चित्र ४९)। आगरे का किला अपनी लाल पत्थर की बनी दो द्वारों वाली

४८
हुमायूँ का मकबरा, दिल्ली
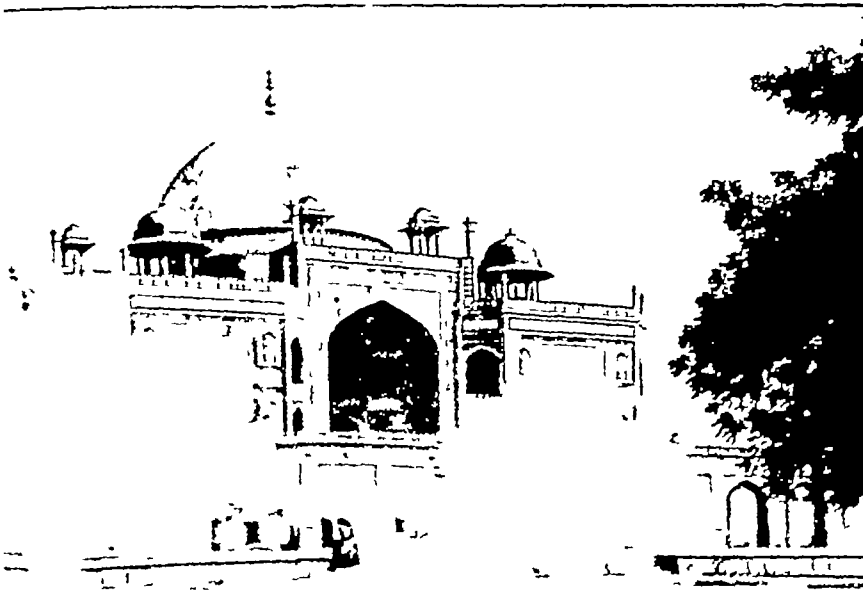
४६
आगरे का किला
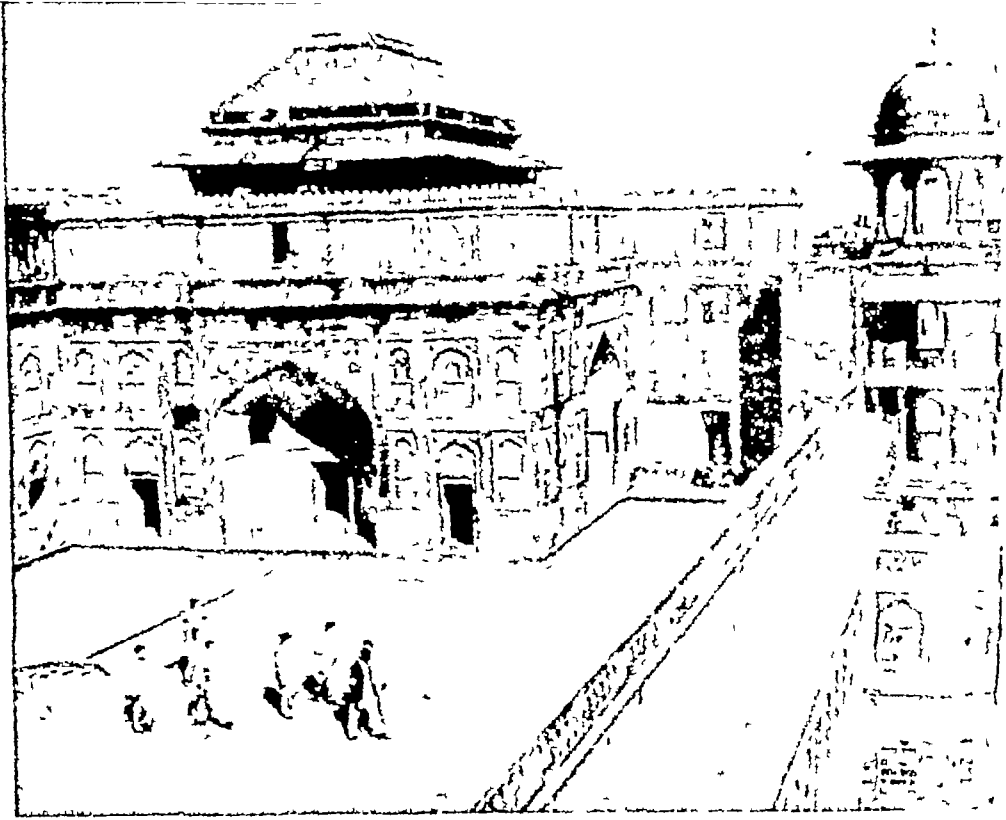
शानदार दीवारों के कारण, जिसमें हाथी पोल का निर्माण अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुआ है, प्रसिद्ध है। अन्दर बनी हुई इमारतों में अकबरी महल और जहाँगीर महल का नाम उल्लेखनीय है। दोनों महल उस समय के प्रचलित ढंग के अनुसार बने हैं, जिसमें मध्य में एक समकोण आँगन और उसके चारों तरफ दुमंज़िले कमरों की कतारें होती हैं। अपने अलंकरण के लिए वह विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

आगरे से २६ मील दूर फतेहपुर-सीकरी की वास्तुकला (चित्र ५०) शिल्प-प्रेमी अकबर की प्रतिभा का स्पष्ट प्रमाण है। उसकी चहार-दीवारी अत्यन्त दृढ़ थी, और उसमें नौ द्वार थे। मुख्य द्वारों में से एक का नाम आगरा दरवाज़ा है। चहारदीवारी के अन्दर जोधबाई का महल है, जिस पर हिन्दू शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। आँगन के चारों ओर बने हुए दुमंजिले कमरों के दरवाज़े अन्दर की ओर खुलते हैं, और इसमें एक बहुत सुन्दर दरवाज़ा तथा छज्जे हैं। इसमें 'हवाखाना' नाम का एक दुमंजिला मण्डप है। इसका अलंकरण पश्चिम भारत की वास्तुकला के अनुकरण पर हुआ है।

फतेहपुर सीकरी की इमारतों में बीरबल भवन (चित्र ५१) तथा दीवाने ख़ास (चित्र ५२) भी ध्यान देने योग्य इमारतें हैं। बीरबल का भवन अपनी अत्यधिक सुन्दर नक्काशी से युक्त अलंकरण और एक विशेष प्रकार की छत के कारण बरबस मन को मोह लेता है। दीवाने ख़ास के आन्तरिक भाग में एक विशाल कक्ष है, जो ब्रैकटों पर बनी हुई गैलरी और एक कोने से दूसरे कोने तक बनी हुई छोटी झूलती हुई गैलरियों से विभाजित होता है। दो गैलरियों के मिलन बिन्दु पर एक गोलाकार मंच बनाया गया है। पूरी इमारत इस प्रकार बनी है कि कई कोष्ठों के समूह से स्तम्भ का

५०
अ बर की राजधानी,
फतेहपुर सीकरी
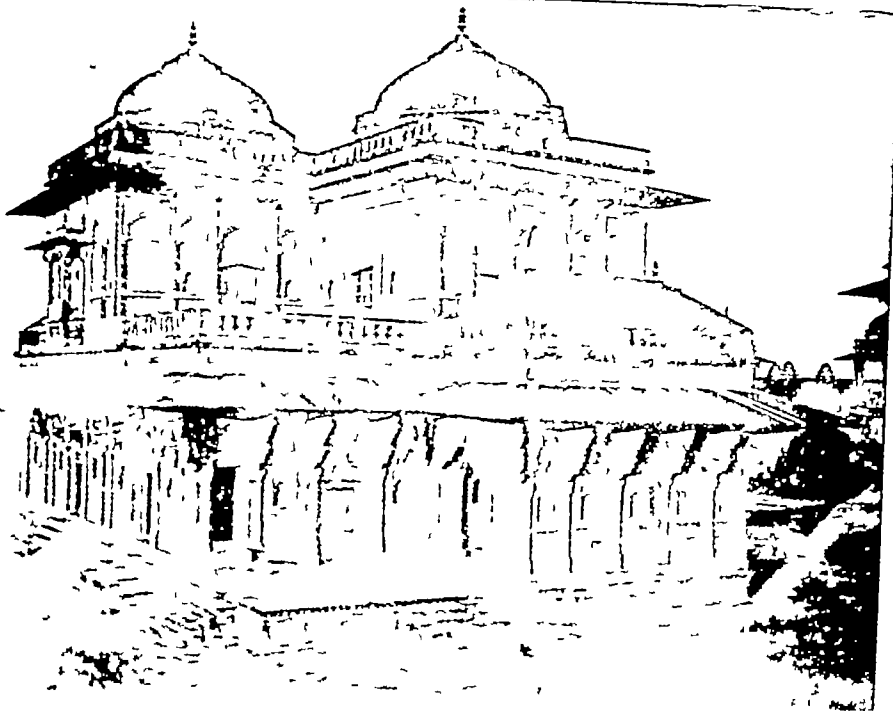
५१
बीरबल का भवन,
फतेहपुर सी।री
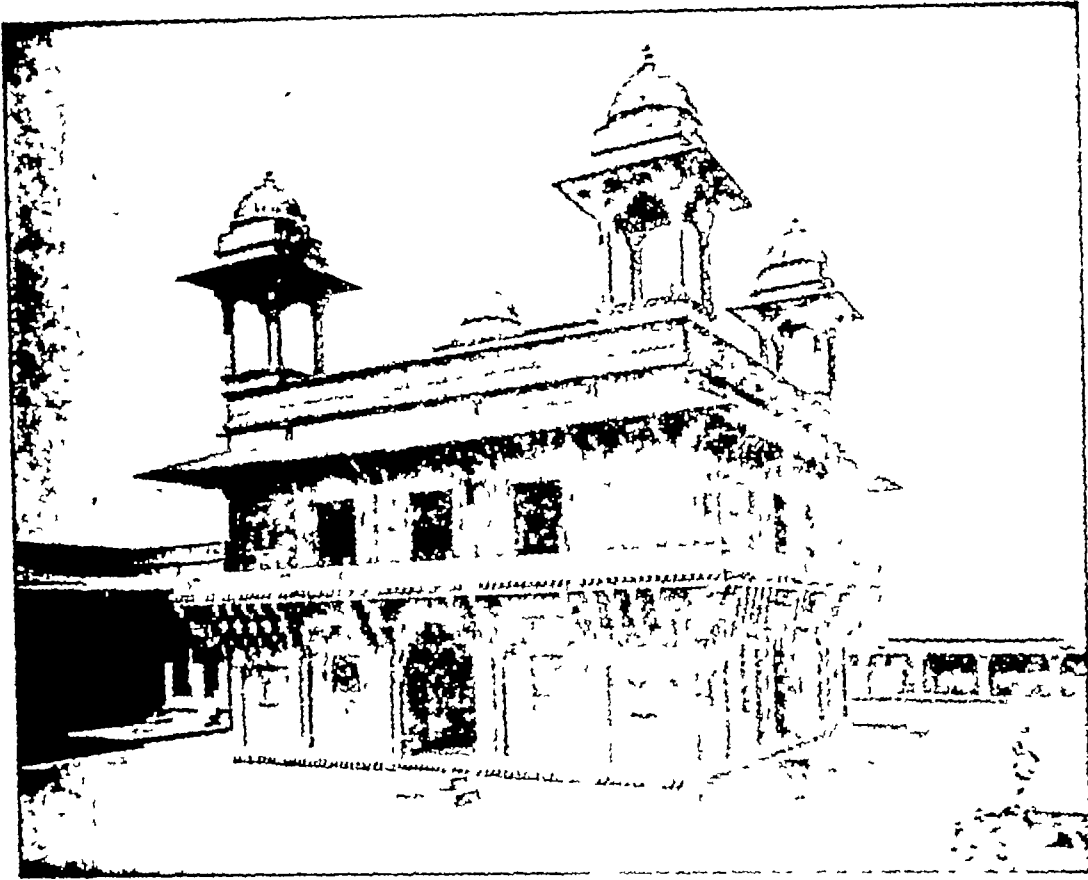
५२ दीवाने खास, फतेहपुर सीकरी

शीर्ष बन जाता है। इसी अद्भुत कक्ष में अकबर अपने पूरे साम्राज्य के धार्मिक प्रवक्ताओं के शास्त्रार्थ सुना करता था।

सीकरी की सबसे प्रभावपूर्ण इमारत जामा मस्जिद है। यह सुडौल आकार की है और आँगन में प्रविष्ट होने के लिए इसमें तीन प्रवेश द्वार हैं। इसका प्रार्थनाकक्ष एक स्वतंत्र स्थान है, जिसमें सुन्दर बरामदा है और बीच में एक द्वार-मण्डप है। इसके चारों तरफ आर-पार मेहराबदार भाग है। मुखभाग के ऊपर तीन गुम्बद हैं। मस्जिद का सुन्दरतम भाग उसका बुलन्द दरवाज़ा है (चित्र ५३), जो अपनी
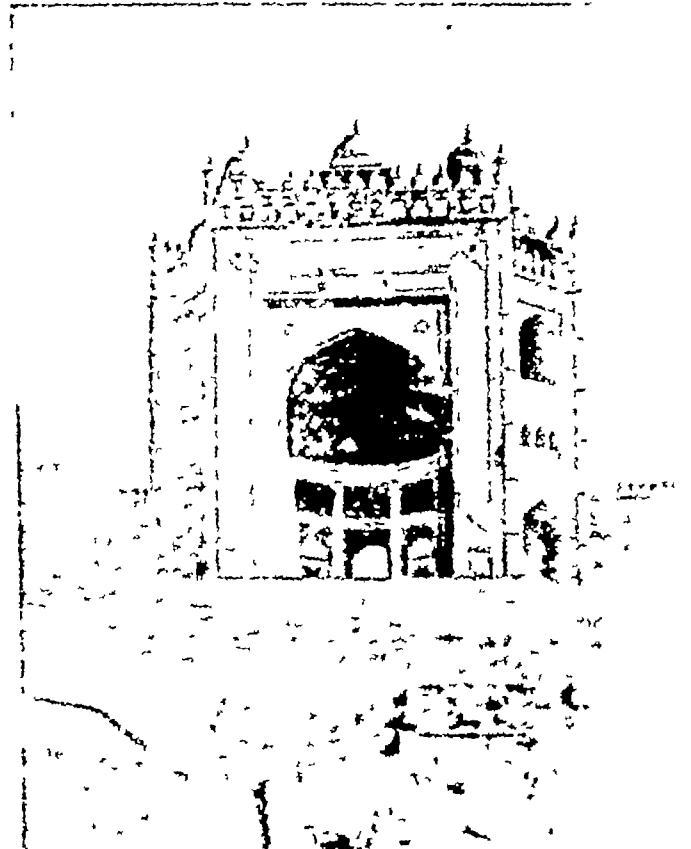
५३ बुलन्द दरवाज़ा, फतेहपुर सीकरी
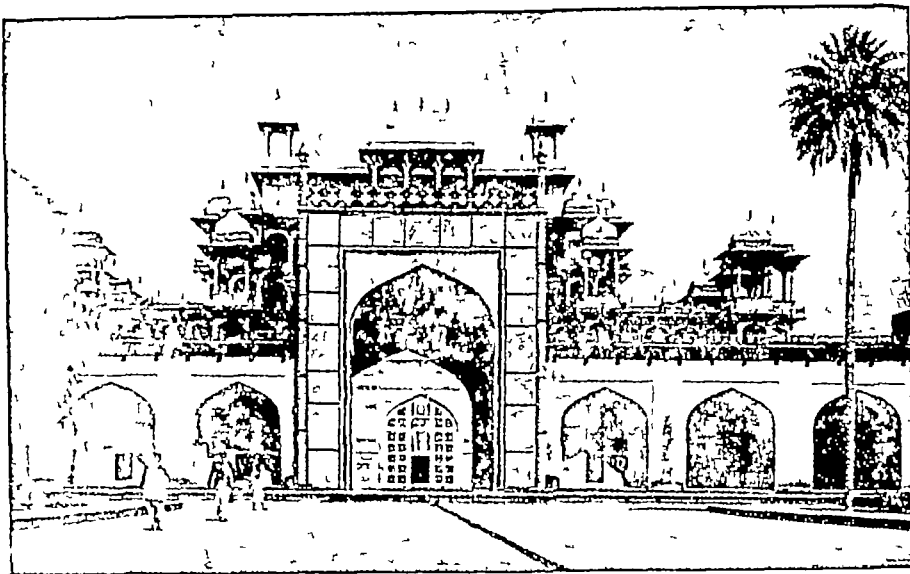
५४ सिकन्दरा में अकबर का मकबरा, आगरा

५५ एतमादुद्दौला का मकबरा आगरा
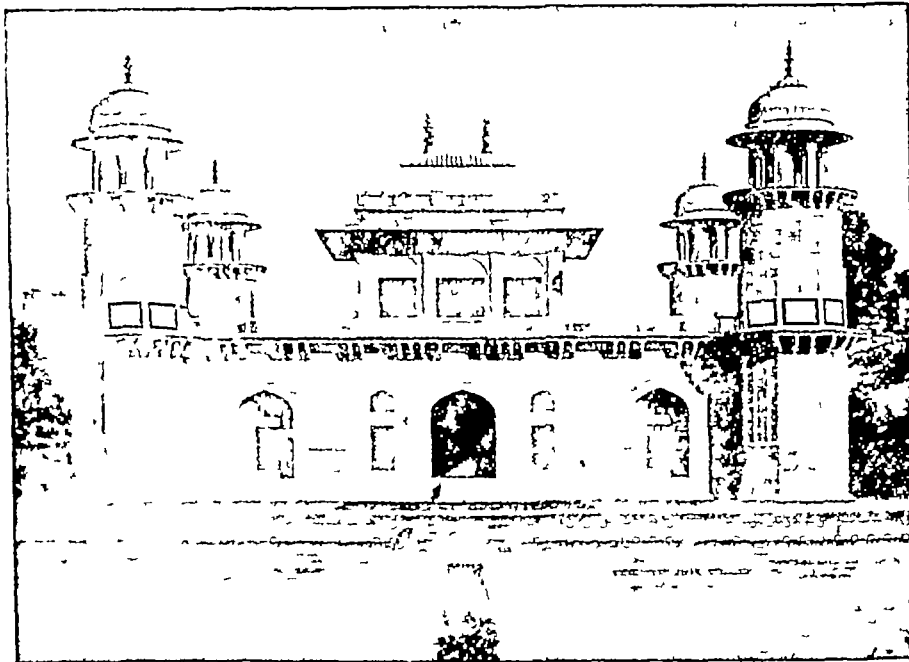
प्रभावपूर्ण ऊँचाई, सामने निकले हुए बड़े-बड़े बरामदों के कारण प्रसिद्ध हैं, परन्तु इसके दूसरे भाग काफी छोटे बने हैं जिनमें साधारण आकार के दरवाज़े हैं।

जहांगीर कोई बड़ा भवन-निर्माता नहीं था, परन्तु उसने कई सुन्दर बाग बनवाये थे, जिनमें काश्मीर में श्रीनगर के समीप बने हुए शालीमार बाग का नाम उल्लेखनीय है। उसके समय के अनेक प्रसिद्ध स्मारकों में आगरे में अकबर का मकबरा भी एक है (चित्र ५४)। यह एक विशाल इमारत है, जिसमें पाँच सीढ़ियाँ हैं, जो जैसे जैसे हम ऊपर चढ़ते हैं छोटी होती जाती हैं। अंतिम मंज़िल सुन्दर है। लाहौर में जहांगीर का मकबरा भी प्रभावोत्पादक इमारत है। आगरे में नूरजहां के पिता और जहांगीर के प्रिय पात्र एतमादुद्दौला का मकबरा (चित्र ५५) बेगम की कला के प्रति सुन्दर रुचि का प्रमाण है। मुगल वास्तुकला के पूरे इतिहास में इतनी सुन्दर और कोई इमारत नहीं है। इसकी प्रमुख विशेषता इसका शुद्ध अलंकरण है। मकबरा सफेद संगमरमर का बना है जो बारीक नक्काशी से सुशोभित है। वास्तव में इस मकबरे का अलंकरण शाहजहां के बनवाये हुए संगमरमर के बहुमूल्य मण्डपों और रंगीन मीनाकारी कार्य का अग्रदूत है।

यह कहना न्यायसंगत ही प्रतीत होता है कि शाहजहां को लाल पत्थर से बनी हुई जो इमारतें मिली थीं, उसने उनको संगमरमर में बदल दिया था। यह संगमरमर राजपूताना के मकराना नामक स्थान में प्रचुरता के साथ प्राप्त होता था। नवीन उपकरणों के प्रयोग से भवन-निर्माण कला और अलंकरण में नव जागृति तथा रंगीन पच्चीकारी के काम में अधिक कलात्मकता आई। शाहजहां ने नुकीली मेहराबें
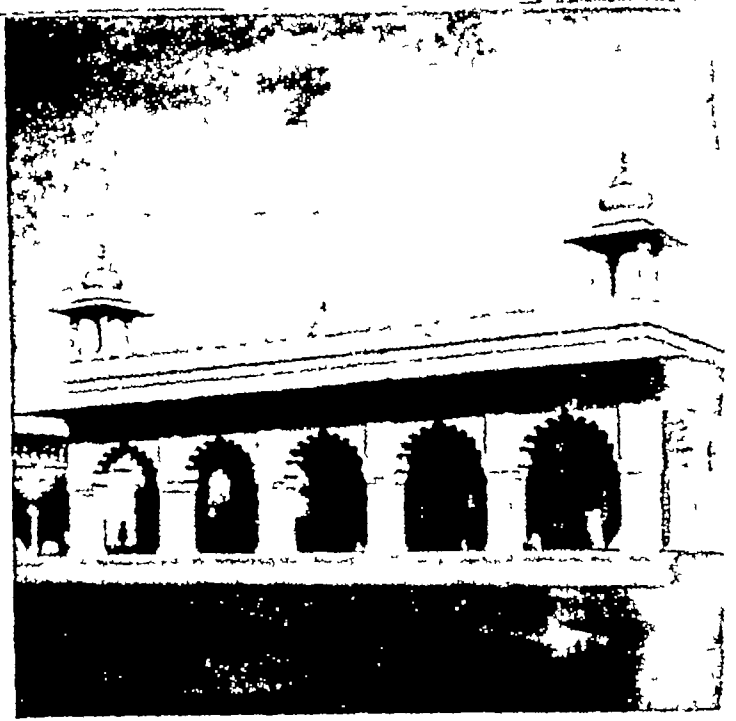
५६ लालकिले में दीवाने खास, दिल्ली

५७ लालकिले के दीवान आम में सिंहासन, दिल्ली

५८ लालकिले के दीवाने खास में संगमरमर की मेहराबें, दिल्ली

५९ मोती मस्जिद, आगरा
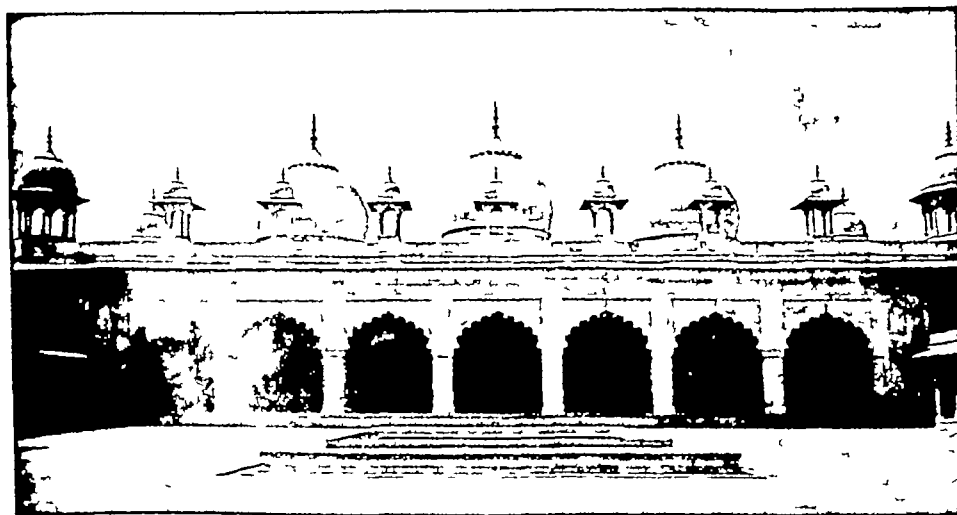
बनवा कर वास्तुकला में एक नवीन शैली का श्रीगणेश किया।

इसने आगरे के किले में जहांगीर महल के उत्तर की ओर बने हुए सारे भवनों को गिरवा कर उनके स्थान पर दीवाने आम, दीवाने खास, मोती मस्जिद, आदि शानदार इमारतें बनवाईं। दीवाने खास का हॉल और उसमें बने हुए स्तंभों की दोहरी कतारों से अधिक सुन्दर और क्या हो सकता है? दोष रहित सामग्री तथा कुशल शिल्पकारों के हाथों से १६५४ में निर्मित मोती मस्जिद (चित्र ५६) तत्काल हमारा मन मोह लेती है।

अनेक इमारतें बनवा कर भी शाहजहाँ को असन्तोष बना रहा और उसने दिल्ली में एक नया नगर बसाने का निश्चय किया। दिल्ली के किले में तीन प्रवेश द्वार, अंगरक्षकों के लिये बैरक, दरबार से संबंधित लोगों के लिए निवास-कक्ष, दरबार हॉल, शाही भंडारगृह, पाकशालाएँ, अश्वशालाएँ इत्यादि बने थे। शाही महल सबसे अधिक शानदार है, और यह चौकोर अथवा आयताकार बना हुआ है। प्रत्येक महल में सुन्दर बाग और अलग-अलग मण्डप बने हुए थे, जिनमें विशालकाय स्तंभ और उनके बीच प्रवेशद्वार थे और उनकी छतें कंगूरेदार मेहराबों पर स्थित थीं (चित्र ५८)। अन्दर का सारा फर्श छोटी-छोटी दस्कोण नक्काशी अथवा रंगीन और सुन्दर नमूनों

६० जामा मस्जिद दिल्ली
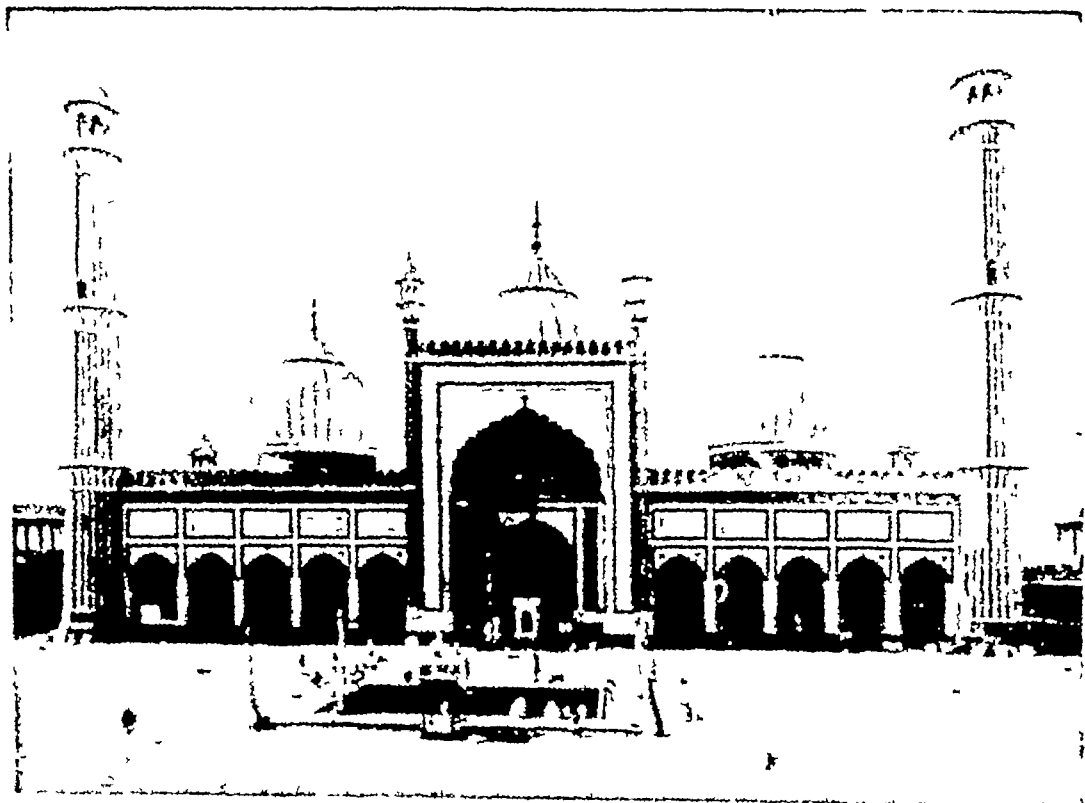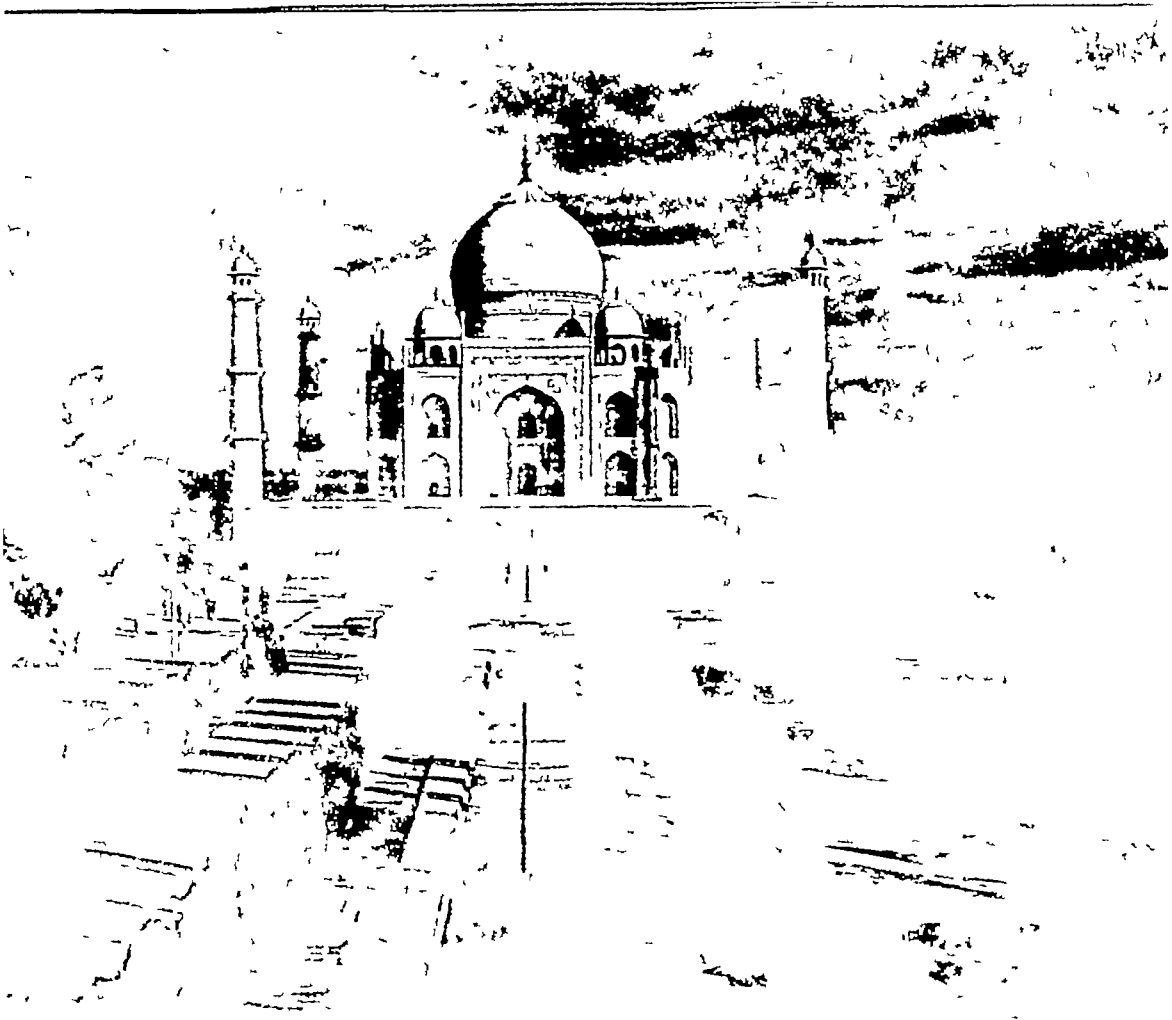
६१ ताजमहल, आगरा

में सुशोभित है। यमुना की एक नहर से किले में पानी आता था और यहाँ से वह पानी सारे फव्वारों में जाता था।

दिल्ली की प्रसिद्ध जामा मस्जिद के निर्माण का आरम्भ १६४४ में हुआ था। यह १६५८ में पूरी हुई थी (चित्र ६०)। इसकी शानदार और प्रभावपूर्ण बनावट की एक निजी विशेषता है। इसके मनोहारी फाटक, अनगिनत सीढ़ियाँ और गुम्बद अतीव सुन्दर हैं। आगरे की जामा मस्जिद भी उसी समय की बनी हुई है और इसकी बनावट दिल्ली की जामा मस्जिद के ही समान है। इमारत का सौन्दर्य उसके बागों और उनके फव्वारों से और भी अधिक बढ़ जाता है।

ताजमहल (चित्र ६१) के विषय में यह ठीक ही कहा गया है कि किसी मृत व्यक्ति की स्मृति में बनाई गई यह सर्वोत्कृष्ट कलाकृति है। बादशाह शाहजहाँ की प्रियतमा मुमताज़ महल अपने जीवन काल में उस समय के सुन्दरतम महल 'खास महल' में रहती थी, और मृत्यु के बाद वह जिस स्थान पर विश्राम कर रही है, उसके सौन्दर्य की तुलना विश्व में कहीं नहीं है। यथार्थ में यह स्मारक शिल्पकारों की प्रतिभा

और सौन्दर्य के प्रति सम्राट की अभिरुचि का अमर प्रमाण है।

इसको बनाने के लिए भारत के सभी भागों से न केवल कुशल संगतराश और मीनाकारी तथा पच्चीकारी करने वाले कारीगर बुलाये गए थे, बल्कि बगदाद, बुखारा, शिराज और समरकन्द से भी लिपि-कुशल, मीना-पच्चीकारी के कारीगर और शिल्पकार बुलाये गये थे। निर्माण-कार्य आरम्भ करने से पूर्व पूरी योजना ब्यौरेवार ढंग से तैयार कर ली गई थी। एक सुन्दर स्थान चुना गया और बाग का नक्शा बनाया गया। चहारदीवारी के उत्तर की ओर एक चौड़ी छत है, मध्य में मकबरा है, और पूरे नक्शे में सामंजस्य बनाये रखने के लिए एक ओर एक तथा दूसरी ओर एक दूसरी इमारत है। संगमरमर की ऊँची छत के बाद मकबरा अप्रत्याशित रूप से ऊँचा उठने लगता है। इसका आकार चौकोर है और इसकी ऊँचाई प्रायः समान ऊँचाईवाले दो भागों में विभाजित की गई है। इसकी सबसे बड़ी शान इसका ऊपरी विशाल गुम्बद है। आन्तरिक भाग में नीचे की ओर तहखाना है और उसके ऊपर मेहराबदार कक्ष है जहाँ मकबरा बना है। बाह्य अलंकरण की दृष्टि से इसका प्रमुख सौन्दर्य रंगीन पच्चीकारी के बने हुए अरबी नृत्य, संगीत और अलंकरण आदि के दृश्य, कमल की पंखुड़ियाँ तथा अन्य पुष्पों के चित्रों में है। निस्सन्देह मानव तथा प्रकृति के संयोग से जिस अलौकिक सौन्दर्य की उत्पत्ति हुई है, वह हमारे लिए अमूल्य निधि है।

यद्यपि औरंगजेब की भी बनवाई हुई कुछ भारी भरकम इमारतें हैं परन्तु पूर्वजों की तुलना में निश्चय ही इनकी कला हीन है। औरंगाबाद में औरंगजेब की बेगम का मकबरा ताजमहल का अनुकरण ही तो है।

मुगल वास्तुकला से स्पष्टतः भिन्न एक और शिल्प-शैली बीजापुर में प्रचलित थी। इस स्वतंत्र शैली को आरम्भ करने का श्रेय बीजापुर के आदिलशाही वंश को है। तुर्की होने के कारण आदिलशाह के वंशजों ने अत्यन्त सफलतापूर्वक देशी कला में विदेशी कला का समन्वय किया। मुहम्मद आदिलशाह (१६२७-५८) का मकबरा गोल गुम्बज (चित्र ६२) एक विशाल स्मारक है। कब्र को घेरे हुए एक बहुत बड़ा और उचित अनुपात में बना हुआ कमरा है तथा इसकी मुख्य विशिष्टताएँ हैं अष्टकोणात्मक बुर्ज और दीवार के नीचे बनी हुई भारी-भारी कार्निसें। मेहराबों की योजना भी अत्यन्त कुशलता से हुई है। गोल गुम्बज का गम्भीर सौन्दर्य मिहतर महल के सौन्दर्य से भिन्न है जो मस्जिद के प्रवेशद्वार का रूप ले लेता है। इसके सामने निकले हुए छज्जे की खिड़कियाँ हमें तुरन्त आकर्षित कर लेती हैं।

इससे पहले बनी हुई इमारतों की चर्चा करते हुए जिस सुन्दर स्मारक का नाम उल्लेखनीय

६७ गोल गुम्बज, बीजापुर

है, वह है इब्राहीम का रोज़ा। इसमें इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय की कब्र और एक मस्जिद है। दोनों स्मारकों में मेहरावें बनी हुई हैं और तराशी हुई दीवारगीरों तथा अलङ्कृत बुर्जों पर चौड़े मार्ग हैं। दोनों के ऊपर बल्ब के आकार का एक गुम्बद बना है। उसकी नक्काशी का अलकरण बीजापुर के सगतराशों की संवेदनशील कल्पना का ही परिणाम है।

मध्ययुगीन भारत में भारतीय वास्तुकला के विकास के लिए अनेक बातें उत्तरदायी हैं, जैसे वास्तुकला की एक समृद्ध परम्परा, शासक राजवशों का सरक्षण, सुरक्षित जीवन और देश की समृद्धि। उस समय के शासक वास्तव में वास्तुकला के विकास के अनेक प्रयोगों में अभिरुचि रखते थे। समय के साथ परिवर्तित होती हुई नवीन सास्कृतिक धाराओं (चित्र ६३) के साथ निर्माण तथा अलकरण पर वह खास ज़ोर देते थे। धनी वर्ग के व्यक्ति, जैसे व्यापारी और उच्च अधिकारी मन्दिर, मस्जिद, निवासगृह और बाग़ इत्यादि बनवाने पर भी व्यय कर सकते थे।

यदि हम १८वीं शताब्दियों की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण करें तो पता लगता है कि उस समय जीवन की परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थीं जिनमें वास्तुकला का विकास सम्भव हो सकता। विभिन्न कठिनाइयों के रहते हुए भी उस समय वास्तुकला की परम्परा बनी रही, परन्तु दिल्ली में मुग़ल सल्तनत का अन्त होते ही निर्माण कला के केन्द्र प्रान्तीय राजधानियाँ तथा शाही रियासतें बन गईं। अत. इसके बाद उसे राजपूत राजाओं का संरक्षण प्राप्त हुआ, जिन्होंने अनेक सुन्दर महल बनवाये। अवध के प्रसिद्ध नवाबों ने अनेक विशाल मकबरे बनवाये थे, परन्तु उनकी शिल्पकला उतनी उच्चकोटि की नहीं है।

भारत में अंग्रेज़ों के पदार्पण के साथ ही साथ वास्तुकला पर से राजकीय पृष्ठपोषण उठ गया। भारत के इतिहास में जैसा पहले हुआ था अब भी यही आशा की जाती थी कि यूरोपीय वास्तु-

६३
महाराणा का महल, उदयपुर
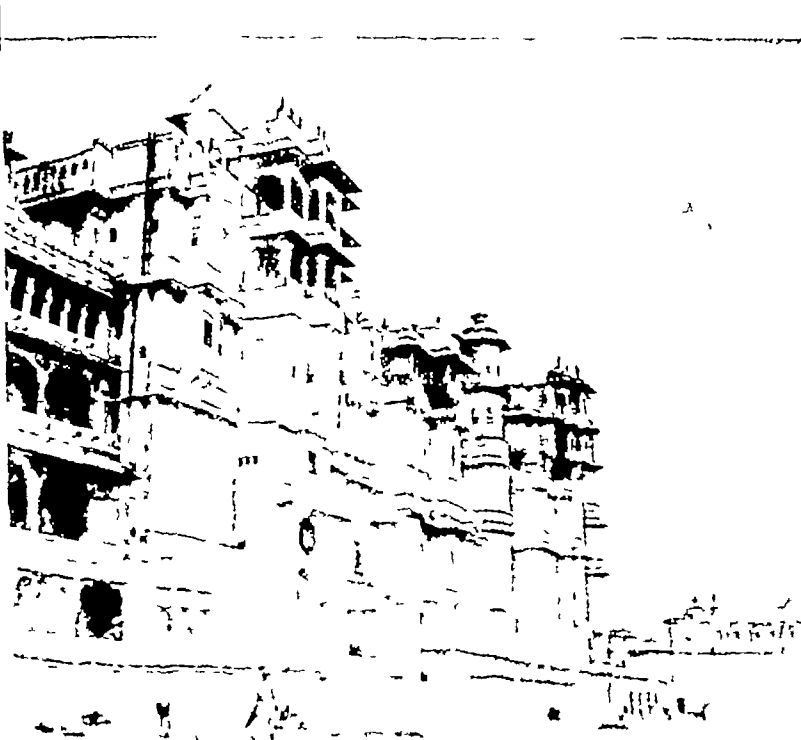
कला के संसर्ग से पतनोन्मुख भारतीय वास्तुकला के स्वरूपों को नवजीवन, नवगति और नया अर्थ मिलेगा। पर यहाँ अंग्रेज़ों को जिन कामों में व्यस्त होना पड़ा, उनके कारण उन्हें इतना अवकाश नहीं था कि वे देश की कलात्मक परम्पराओं को सुरक्षित रखें अथवा उन्हें विकसित करें। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल अर्थात् १८वीं और १९वीं शताब्दी में कलकत्ते में जिन भवनों का निर्माण हुआ, उससे प्रत्यक्ष है कि यह उस समय लन्दन में प्रचलित कला का ही अनुकरण है, जिसमें क्लासिकल तथा गॉथिक कला के प्रति मोह था (चित्र ६४)। यद्यपि शाही प्रोत्साहन प्राप्त यह वास्तुकला देश के लिए अभारतीय थी, परन्तु शीघ्र ही यह लोक-प्रिय हो गई। इसकी कुछ मुख्य विशेषताओं का, जैसे ऊँचे खम्भों, त्रिकोणात्मक छज्जों और दरवाज़ों की पंक्तियों इत्यादि का प्रयोग सार्वजनिक इमारतों में होने लगा।

१८वीं शती की भारतीय वास्तुकला में जहाँ एक ओर मुग़ल परम्पराओं को सुरक्षित रखने और अपनाने की प्रवृत्ति है, वहाँ उसमें भारी अलंकरण, योजना-विहीनता और घटिया उपकरणों के प्रयोग के रूप में पतन भी स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है। फिर भी कला के इस पतनकाल में सवाई जयसिंह ने अत्यन्त सावधानी से योजना बनाकर जयपुर नामक नगर की नींव १७२८ में डाली। यद्यपि उन्होंने नगर की कोई यथार्थ योजना नहीं बनाई, परन्तु उन्होंने कई यूरोपीय नगरों की योजनाओं का अध्ययन और शिल्पशास्त्रियों से परामर्श किया। उस समय का जयपुर ही एक ऐसा नगर है जो पूर्ण योजना के पश्चात् बनाया गया था, अन्यथा छोटी-छोटी गलियों के किनारे बने हुए

६४ उच्च न्यायालय, कलकत्ता

अव्यवस्थित मकानों की भरमार ही मुख्य रूप से पाई जाती है।

चारों ओर की दृश्यावलि के अनुकूल नगर की योजना आयताकार है। इस आयत की लम्बाई प्रायः पूर्व से पश्चिम की ओर है और यह उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाली चार मुख्य सड़कों में विभाजित है। चौड़ाई में यह पूर्व से पश्चिम जाने वाले दो मार्गों में विभाजित है। मुख्य मार्गों के चौराहे और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग गाड़ियों पर नियन्त्रण रखने के लिए हैं। नगर की मुख्य सड़कें चहारदीवारी में बने आठ फाटकों पर जाकर समाप्त होती हैं। सड़कों के प्रति समकोण

६५
हवा महल, जयपुर
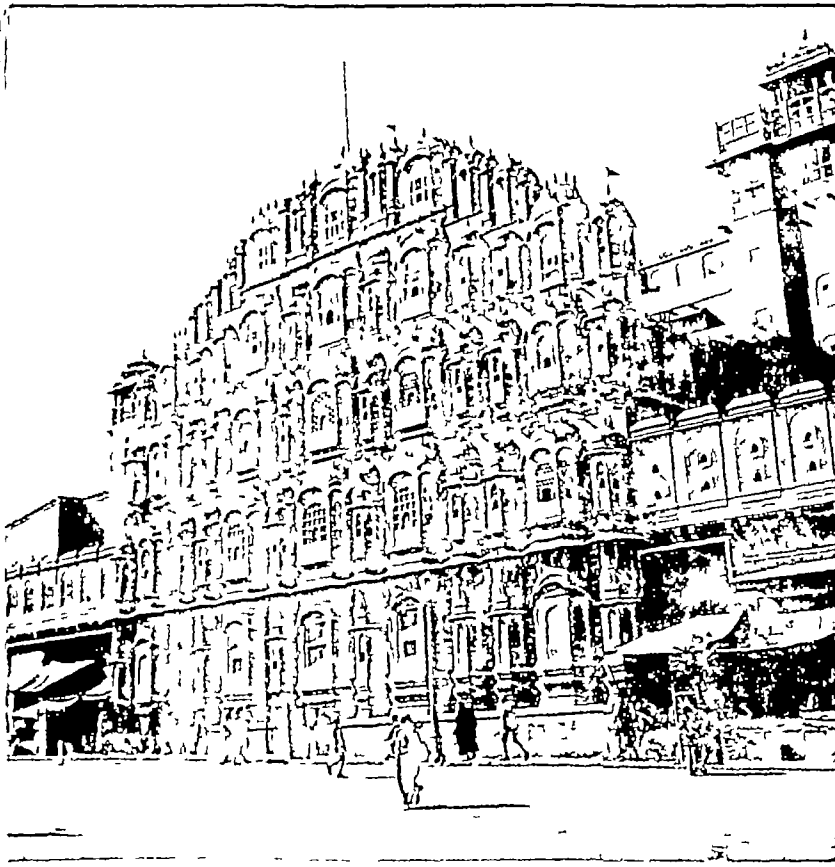
स जो खड बन गए हैं, वे लगभग आत्मभरित इकाइयाँ बन गए हैं। ये भाग छोटी गलियों के द्वारा छोटे उपविभागों में बँट गए हैं। घरों की मुख्य विशेषता है उनके बीच में एक आँगन का होना। बेपर्दगी को बचाने और मौसम के थपेड़ों से सुरक्षा की दृष्टि से खिड़कियों को छोटा बनाया गया है। उनमें लगी हुई स्क्रीन से झाँक कर कोई भी व्यक्ति सड़क की सब चीजें देख सकता है और वह स्वय अदृश्य रह सकता है (चित्र ६५)। छोटी खिड़कियों वाले इसके बाह्य भाग की एकरसता उसमें लगे हुए रग और बनावट के कारण दूर हो जाती है। रंग-बिरंगे पत्थरों से इसके रग की आवश्यकता पूरी हो जाती है तथा जालीदार स्क्रीनों से काटी गई पत्थर की शिलाएँ, जिनमें ब्रैकेट लगे हुए छज्जे के ऊपर स्थिर रहने वाले छज्जे बन जाते हैं, उसकी बनावट को दर्शाती हैं। बनावट में एकरसता दूर करने के लिए सुन्दर पलस्तर किया गया है, कहीं एक रंग का और कहीं भिन्न-भिन्न प्रकार का।

जयपुर नगर का निर्माण करने वाले लोग पुरातनपथी नहीं थे, अत: उन्होंने मुक्त हृदय से दिल्ली, आगरा और यहाँ तक कि बगाल की वास्तुकला के नमूनों को भी स्वीकार किया। फलत. एक ऐसी मनोहर वास्तुकला का विकास हुआ जो भारतीय परम्परा के अनुकूल होकर भी एक वैज्ञानिक नगर-निर्माता की प्रतिभा की परिचायक थी। यह भी स्मरणीय है कि दिल्ली, जयपुर, बनारस और उज्जैन की वेध शालाओं में (चित्र ६६) जयसिंह के बनवाये हुए

नक्षत्र-विज्ञान के यन्त्र केवल वैज्ञानिक उद्देश्यों की ही पूर्ति नहीं करते, बल्कि वे अपने सौंदर्य के लिए भी दर्शनीय हैं। केवल कार्य सिद्धि के लिए बनाई गई अलंकरण-विहीन ये इमारतें इस बात के सजीव प्रमाण हैं कि कोरे शिल्प में भी सौन्दर्य निहित रह सकता है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि विशेष अनुपात और विशेष योजना के अनुसार बनाई गई ये इमारतें सौन्दर्य और प्रेरणाओं का कितना अनुपम दृश्य उपस्थित कर सकती हैं। फिर भी जैसा कि नगर में बाद में किए हुए सुधारों से पता चलता है, जयपुर के शिल्पकारों ने जो नमूने बनाए वे क्षणिक थे। १८वीं के मध्य और १९वीं शताब्दी में बनारस में जिन घाटों का निर्माण हुआ था, उनको देख कर दर्शकों को अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है (चित्र ६७)।

दिल्ली, आगरा, लखनऊ, बनारस इत्यादि स्थानों पर बनी हुई १९वीं शती की इमारतों में प्राचीन परम्पराओं और विदेशी शैली का अद्भुत समन्वय दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि इन इमारतों के बनाने वाले राज-मज़दूरों को वास्तुकला के सिद्धान्तों का ज्ञान बहुत कम था, तथा उन्होंने बिना सोचे समझे तत्कालीन यूरोपीय इमारतों की शिल्पकला सम्बन्धी कुछ विशेषताओं को स्वीकार कर लिया था। परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो प्राचीन शैली का अस्तित्व बना रहा और दूसरी ओर ये नई इमारतें आधुनिक भारतीय वास्तुकला के नमूने भी नहीं कही जा सकतीं।

वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप जनता ने माँग की कि राष्ट्रीय शैली पर ही भवनों का निर्माण किया जाए। अंग्रेज़ों ने कुछ सार्वजनिक इमारतों को पूर्वी ढंग पर बनवाने का प्रयास करके जनता की इस माँग को पूरा करना चाहा। कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हॉल (चित्र ६८) में भारतीय शिल्पकला की कुछ ऊपरी विशेषताएँ हैं और बम्बई के जनरल पोस्ट आफिस तथा प्रिंस आफ वेल्स म्यूज़ियम, बीजापुर के गोल गुम्बद का असफल अनुकरण मात्र हैं। अनेक कालेज, स्कूल और अस्पतालों का निर्माण भारतीय शैली के अनुसार हुआ, परन्तु भारत में आधुनिक वास्तुकला का प्रशिक्षण देने के लिए स्कूल खोलने की समस्याओं को समझने का कोई प्रयास नहीं किया गया। इंजीनियर और शिल्पकारों ने अपनी सुविधानुसार शीघ्रता में स्तम्भों, मेहराबों, खिड़कियों, दरवाज़ों, ब्रैकेट आदि बनाने के लिए नमूने बना लिए और बिना कुछ सोचे-विचारे उन्हें भारतीय शैली का करार दिया। जब बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे बहुमूल्य भवन की योजना बनाई गई, तब भी किसी ने कला की दृष्टि से उसे प्रभावपूर्ण बनाने का ओर ध्यान नहीं दिया। मध्यकालीन मन्दिर के स्तम्भों, शिखरों और जयपुर के उत्तरकालीन जालीदार

६६
जन्तर-मन्तर, नई दिल्ली
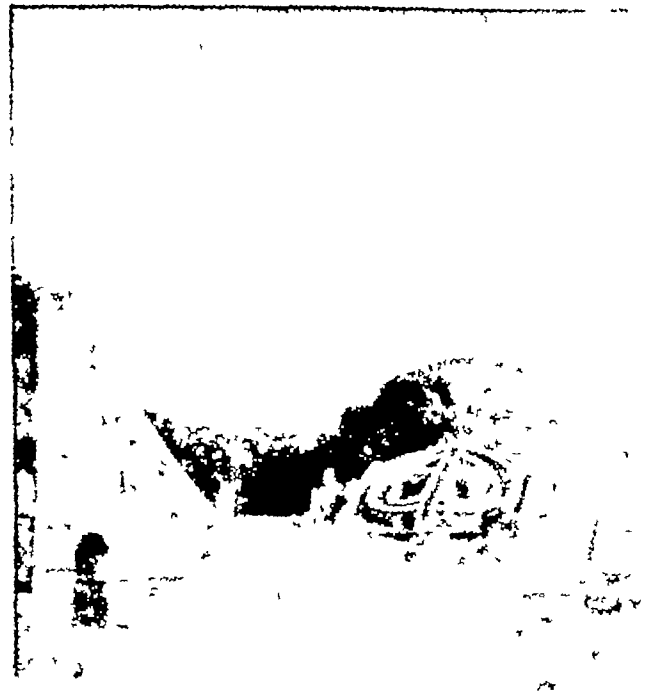
काम के अद्भुत मिश्रण पर भारतीय वास्तुकला की छाप लग गई।

ये जोश के दिन थे, इसलिए किसी ने भी इस बनावटी शास्त्रीय पद्धति के विपक्ष में, जिसमें भूतकाल की कला कभी नहीं आ सकती थी, आवाज़ नहीं उठाई। इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में यहाँ तक कि आज भी हमारे शिल्पकारों के सम्मुख जो समस्या है, वह यह है कि किस प्रकार भारतीय वास्तुकला के परम्परागत विचारों का आधुनिकीकरण किया जाए जिससे वह आधुनिक परिस्थितियों और निर्माण उपकरणों के अनुकूल हो सके। नव प्रेरणाओं के बिना तो पुनरुज्जीवन असफल होना ही था।

नई दिल्ली के निर्माण में भारतीय वास्तुकला की आधुनिक शैली को प्रस्तुत करने का अवसर मिला। दुर्भाग्य से इस परीक्षण को भी सफल नहीं कहा जा सकता। नई दिल्ली के शिल्पकारों का दावा था कि उन्होंने भारत की विभिन्न काल की शिल्प शैलियों का (चित्र ६९) समन्वय कर दिया है। परन्तु दावा करना और बात है और असलियत और। इसका परिणाम यह हुआ है कि आडम्बर की बलिवेदी पर सादगी का बलिदान करके विशालकाय इमारतें खड़ी की गईं। इससे शासक वर्ग का अह भले ही सन्तुष्ट हो गया हो, परन्तु देश की कला परम्परा के साथ तो अन्याय ही हुआ है।

हम पहले ही निर्देश कर चुके हैं कि भारत की परम्परागत वास्तुकला तीव्रगति से लुप्त हो रही है और अभी तक किसी नवीन शैली का जन्म नहीं हुआ है। अब प्रश्न यह उठता है कि आधुनिक भारतीय वास्तुकला के स्वरूप और नमूनों के विषय में शिल्पकारों तथा जनता की रुचि क्या हो? स्पष्ट है कि शिल्पकारों और जनता दोनों को ही इसका उत्तर देना है।

६७ बनारस के घाट
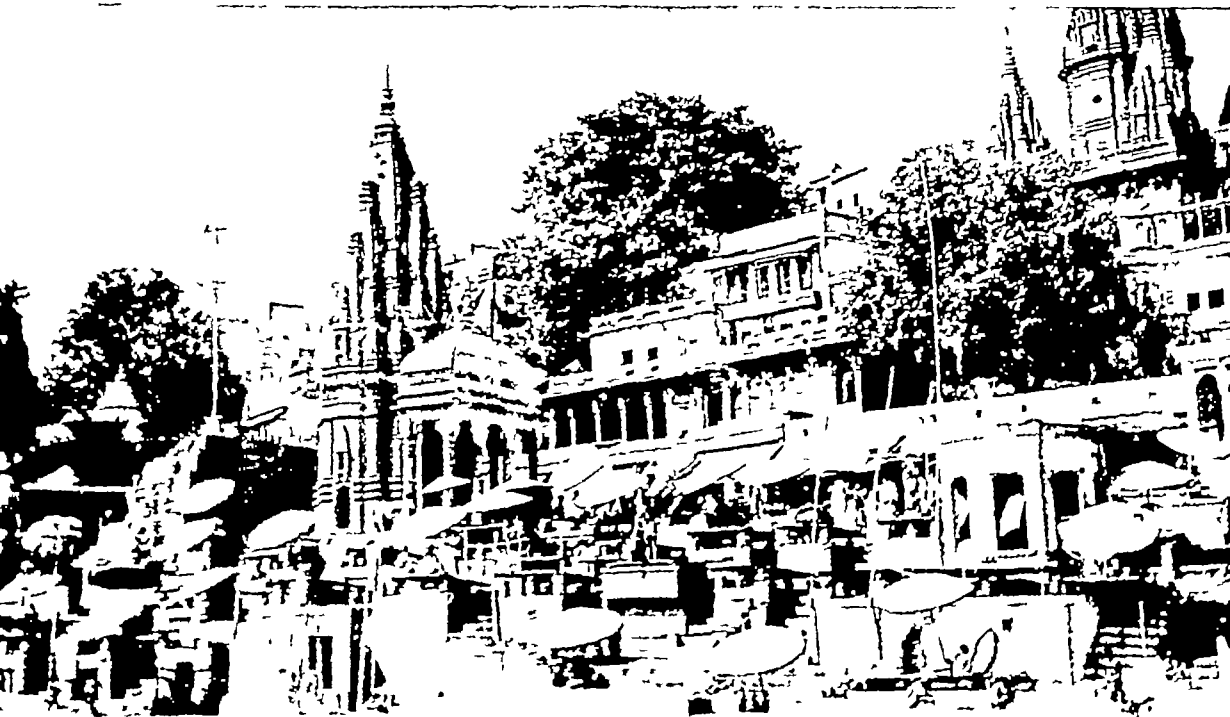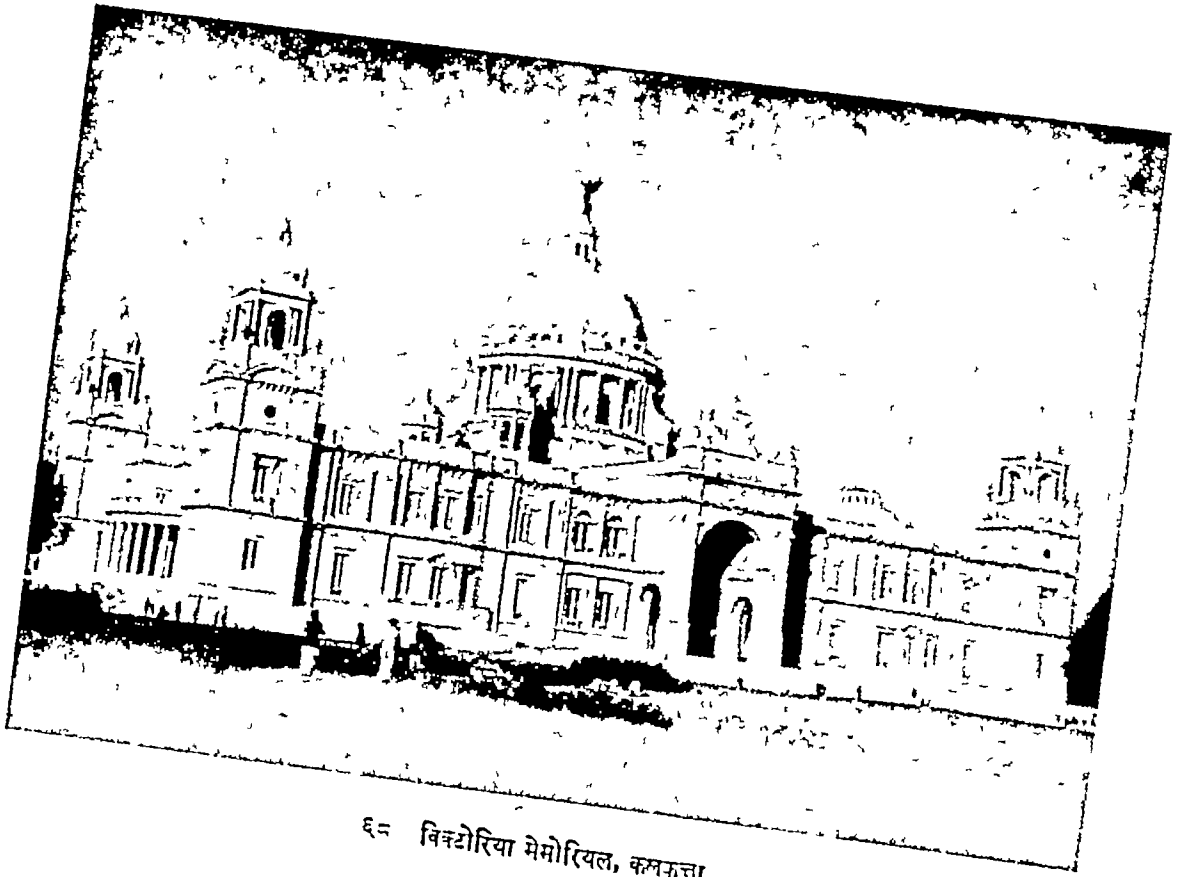
६८ विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता

निस्सन्देह आधुनिक भारतीय वास्तुकला में राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिम्बित होना आवश्यक है क्योंकि भारत के इतिहास के प्रत्येक युग में वास्तुकला जनता की आध्यात्मिक तथा भौतिक सफलताओं का दर्पण रही है। परन्तु प्राचीन मान्यताएँ आज प्रचलित नहीं हैं। आज हम जिस युग में रह रहे हैं, उसमें तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। देश का द्रुत औद्योगीकरण हो रहा है और जनता वैज्ञानिक प्रगति के लिए लालायित है। सर्वत्र इस शीघ्र परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज भवनों का निर्माण हस्तनिर्मित उपकरणों से नहीं होता क्योंकि लोहे के फ्रेम, सीमेण्ट और कंक्रीट आदि से यह आवश्यकता पूरी हो जाती है।

इसी बीच जनता के सामाजिक-आर्थिक ढांचे और आध्यात्मिक मान्यताओं की अवहेलना कर दी गई है।

हस्तकौशल पर निर्भर रह कर भारतीय वास्तुकला चार हजार वर्षों से भी अधिक समय तक समृद्ध बनी रही और विदेशी प्रभाव को अपने तरीके से ग्रहण करती रही। अंग्रेजों के साथ-साथ भारत में उनकी शिल्पकला का भी प्रवेश हुआ और भारतीय कला को उसके सामने पीछे हटना पड़ा। यह सम्भवतया अवश्यंभावी था, अंग्रेजों ने तो केवल विघटन की प्रक्रिया को तेज कर दिया। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस विघटन की भावना के कारण समय आने पर जनता में राष्ट्रीय वास्तुकला की रुचि जागृत हुई। इस प्रकार देश में एक विचारधारा प्राचीन
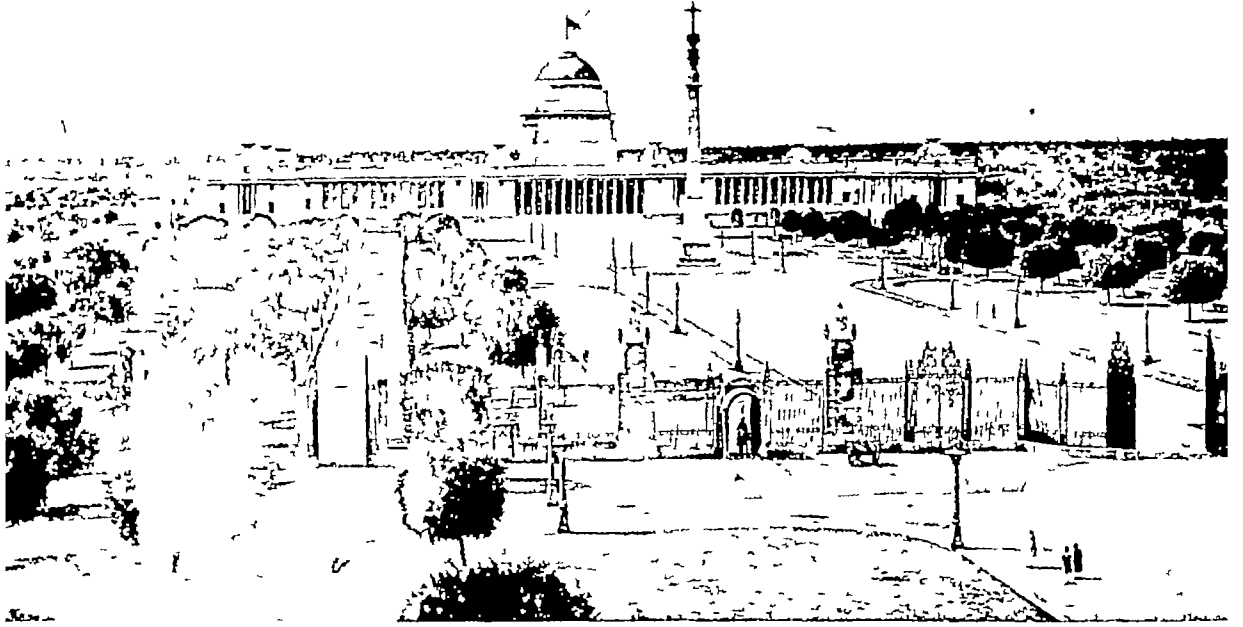
६९ राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली

परम्पराओं को बनाए रखने के पक्ष का समर्थन करती है। देश की शिल्पकला की परम्परा देखते हुए यह बात उचित भी जान पड़ती है। दुर्भाग्यवश, जैसा हम पहले भी बता चुके हैं, इन अन्धविश्वासियों ने नवीन उपकरणों के द्वारा प्राचीन रूपों को लेकर हास्यास्पद अनुकरण किया है। इससे एक अप्रगतिशील वास्तुकला का जन्म हुआ, क्योंकि अनुकरण केवल अनुकरण है, और वह मौलिक सृष्टि की बराबरी कभी नहीं कर सकता। देश की दूसरी विचारधारा आधुनिक शैली के पक्ष में है और इस बात को स्वत स्वीकृत समझती है कि यह विदेशी शैली हमारे देश के लिए उपयुक्त है। यद्यपि आधुनिक वास्तुकला भारतीय वास्तुकला के आधुनिक विचारों वाले व्यक्तियों के सम्पूर्णतया अनुकूल नहीं है, तब भी उसकी उपेक्षा करने को कोई आवश्यकता नहीं है।

भारत के आधुनिक शिल्पकार को यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्राचीन वास्तुकला में भी कुछ तत्व ऐसे थे, जो वर्तमान समय में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। स्वतन्त्र खम्भे, स्क्रीन, बिना खम्भे की दीवारें, चौरस छत आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो आज भी काफी प्रभावपूर्ण ढग से काम में लाई जा सकती हैं। वह साधारण ग्रामीण शैलियों का भी प्रभावपूर्ण तरीके से प्रयोग कर सकता है। जटिल अलकरणों से युक्त नमूनों और तराशी हुई मूर्तियों

७० मैसूर का महल
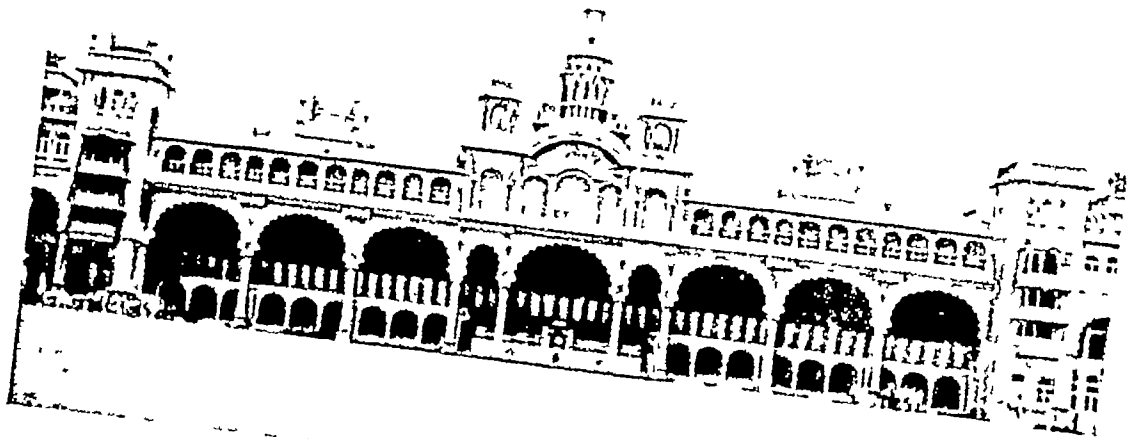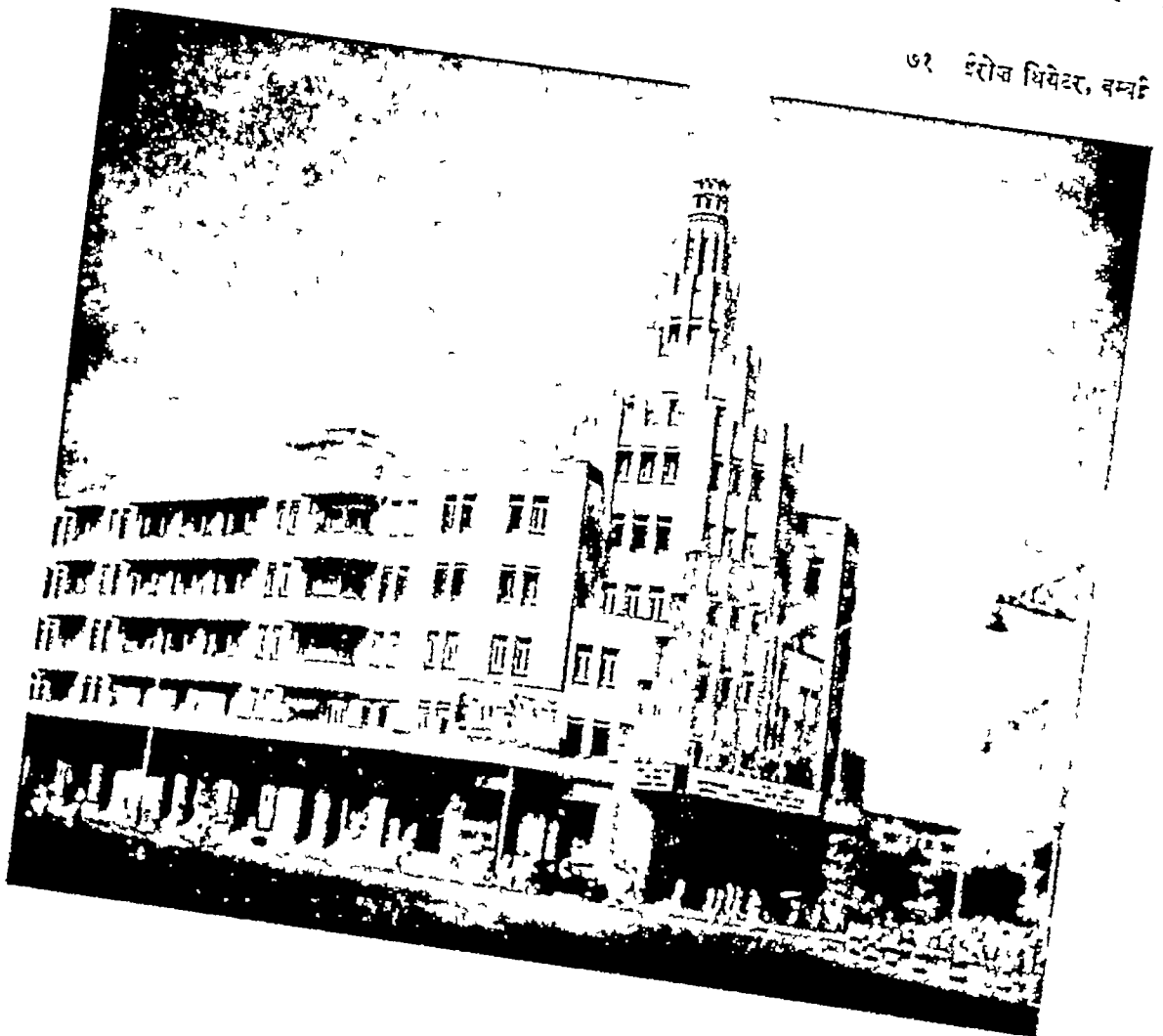
७१ इरोज थियेटर, बम्बई

को भारत की आधुनिक वास्तुकला में कोई स्थान नहीं मिल सकता क्योंकि आज के उपकरण उसके लिए भली प्रकार उपयुक्त नहीं हैं।

यदि उपरोक्त सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया जाए, तो हम एक ऐसी सरल और सीधी-सादी शैली की नींव डाल सकते हैं जो जनता के जीवन और सफलताओं को चित्रित कर सके। यद्यपि अपनी कुछ निजी सीमाओं के कारण यह वास्तुकला मध्यकालीन वास्तुकला की प्रभावपूर्ण श्री और वैभव को (जो तत्कालीन सामन्तवर्ग की शान और शौकत का परिणाम था) कभी भी प्राप्त नहीं कर सकती। ली कोरबुज़ियर द्वारा निर्मित पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ की योजना और बनावट में प्राचीन परम्पराओं तथा आधुनिक उपादेयता का सुन्दर समन्वय है, और आशा है कि इस दिशा में यह नव परीक्षण भारतीय वास्तुकला की राष्ट्रीय शैली के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा।

७२ ली कोरबुज़ियर का बनाया हुआ एक घर, चण्डीगढ़

चित्रों की तालिका